वैश्विक संवाद

15.2

अनेक भाषाओं में एक वर्ष में 3 अंक

भारतीय समाजशास्त्र

राजेश मिश्रा
मैत्रेयी चौधरी
इंदिरा रामाराव
अरविंदर अंसारी
श्रुति तांबे

कट्टरपंथी मुख्यधारा

सबरीना जाजक
इमानुएल टोस्कानो
अन्ना–मारिया मेउथ
टेरी गिवेंस
दमला केसकेकसी
पाशा दश्तगर्द
एंड्रिया ग्रिपो
सुमरिन कालिया
रोबर्टो स्कारामुज्जिनो
सेसिलिया सैंटिली

सैद्धांतिक दृष्टिकोण

अनाहीद अल–हरदान
जूलियन गो

खुला अनुभाग

> डार्सी रिबेरो और दक्षिण से एक वैश्विक सिद्धांत
> जर्मनी में यहूदी–विरोधी भावना का औजारीकरण और फिलिस्तीनी एकजुटता का बहुआयामी दमन
> खंडित आशहर : ईरान में स्त्री–विरोधी नगरीकरण की एक समालोचना

पत्रिका

GD

अंक 15 / क्रमांक 2 / अगस्त 2025
https://globaldialogue.isa-sociology.org/

International Sociological Association

> सम्पादकीय

वर्ष का यह दूसरा अंक भारत पर केंद्रित है, जो दुनिया के सबसे जीवंत समाजशास्त्रीय समुदायों में से एक का घर है। भारतीय समाजशास्त्र को समर्पित इस खंड में, देश के पाँच प्रमुख बुद्धिजीवी विभिन्न मुद्दों पर विचार–विमर्श करते हैं, जैसे स्वदेशी और पश्चिमी समाजशास्त्रों के बीच तनाव, विचारों को उपनिवेशवाद से मुक्त करने के निरंतर प्रयास, भारतीय समाजशास्त्र का ऐतिहासिक विकास और क्षेत्रीय विशिष्टताएँ, और नारीवाद एवं सामाजिक आंदोलनों का प्रभाव। भारतीय विमर्शों में इन केंद्रीय विषयों को सामने लाकर, हम 1951 में स्थापित भारतीय समाजशास्त्रीय सोसायटी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, जिसका 50वाँ वार्षिक सम्मेलन दिसंबर 2025 में आयोजित होगा।

इस अंक का मुख्य विषयगत खंड अति–दक्षिणपंथ के सामान्यीकरण पर केंद्रित है। सबरीना जाजक, इमानुएल टोस्कानो और अन्ना–मारिया म्यूथ द्वारा संकलित सात लेख तर्क देते हैं कि अति–दक्षिणपंथ पहले ही 'नया सामान्य' बन चुका है। वे इस प्रवृत्ति को उत्तेजक रूप से 'कट्टरपंथी मुख्यधारा' के रूप में वर्णित करते हैं, और सत्तावादी, लिंगवादी, जातीय–राष्ट्रवादी, प्रवासी–विरोधी, अधिकार–विरोधी और बहुलवाद–विरोधी विचारधाराओं के व्यापक सामान्यीकरण की ओर इशारा करते हैं। लेखक उन विविध और विकसित होती रणनीतियों का विश्लेषण करते हैं जिनके माध्यम से अति–दक्षिणपंथ वैधता प्राप्त करता है और राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को नया रूप देता है। वे यूरोपीय दलीय प्रणालियों में बदलावों, अतिवादी सामग्री को मुख्यधारा में लाने में डिजिटल प्लेटफार्मों की भूमिका और पुरुष–समाज के भीतर पुरुष आत्म–सुधार के स्थानों के कट्टरपंथीकरण के माध्यम से अति–दक्षिणपंथी राजनीति के सामान्यीकरण का पता लगाते हैं। फैशन के साथ अति–दक्षिणपंथ के जुड़ाव का विश्लेषण पहचान निर्माण और वैचारिक प्रसार के एक सूक्ष्म लेकिन शक्तिशाली उपकरण के रूप में किया गया है। इसके अलावा, पाठ में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार अति–दक्षिणपंथी अभिनेता वैश्विक और स्थानीय दोनों संदर्भों में नागरिक समाज में घुसपैठ करते हैं और किस प्रकार लोकलुभावन शासन सत्तावादी और बहिष्कारवादी एजेंडों के साथ तालमेल बिठाने के लिए नागरिक स्थान का पुनर्निर्माण करते हैं।

हमारे 'सैद्धांतिक दृष्टिकोण' खंड में, फिलिस्तीनी समाजशास्त्री अनाहीद अल–हरदान और अमेरिकी समाजशास्त्री जूलियन गो, उपनिवेश–विरोधी विचारों को आलोचनात्मक सामाजिक सिद्धांत के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में पुनः स्थापित करते हैं। उनका तर्क है कि उपनिवेश–विरोधी संघर्षों ने मौलिक अवधारणाएँ और अंतर्दृष्टियाँ उत्पन्न की हैं जो साम्राज्यवादी ज्ञान–मीमांसा को चुनौती देती हैं। आलोचना को भौगोलिक पहचान में स्थापित करने के बजाय, वे उपनिवेश–विरोधी दृष्टिकोण को असहमति सिद्धांत के एक प्रेरक आधार के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

खुले खंड' में तीन विविध योगदानों के साथ हम इस अंक का समापन करते हैं। पहला लेख ब्राजीलियाई विचारक डार्सी रिबेरो की विरासत और वैश्विक समाजशास्त्र में उनके योगदान पर पुनर्विचार करता है। दूसरा लेख जर्मन संदर्भ में गाजा युद्ध का विश्लेषण करता है, जिसमें यहूदी–विरोध के औजारीकरण, असहमति को दबाने और शैक्षणिक एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में फिलिस्तीन के साथ एकजुटता को लक्षित करने वाले विभिन्न प्रकार के दमन पर चर्चा की गई है। अंतिम लेख ईरान में शहरी स्थान के निर्माण में महिलाओं को चुप कराने की आलोचना करता है।

ग्लोबल डायलॉग के संस्थापक संपादक माइकल बुरावॉय के दुखद निधन के कारण हमारा अगला अंक पूरी तरह से उन्हें समर्पित होगा। अगर आप योगदान देना चाहते हैं या सुझाव देना चाहते हैं, तो बेझिझक हमसे संपर्क करें। ■

ब्रेनो ब्रिंगल, *ग्लोबल डायलॉग* के संपादक

> वैश्विक संवाद जी.डी. वेबसाइट पर अनेक भाषाओं में देखा जा सकता है।

> प्रस्तुतियाँ <globaldialogue@isa-sociology.org> पर भेजी जा सकती हैं।

International Sociological Association

GLOBAL DIALOGUE

> संपादक मण्डल

संपादक : ब्रेनो ब्रिंगेल

सह–सम्पादक : विटोरिया गोंजालेज, कैरोलिना वेस्टेना

सहयोगी सम्पादक : क्रिस्टोफर इवांस

प्रबंधन संपादक : लोलाबुसुतिल, अगस्त बागा

सलाहकार : ब्रगिट औलेनबैकर, क्लाउस डोरे

क्षेत्रीय संपादक

अरब दुनिया : *(लेबनान)* साड़ी हनाफी, *(ट्यूनिशिया)* फातिमा रधौनी, सफौने ट्रैबेल्सी।

अर्जेन्टीना : मैगडालेना लेमस, जुआन परसिआ, दांते मार्चिसिओ।

बांग्लादेश : हबीबुल खोंड्कर, खैरुल चौधरी, बिजॉय कृष्ण बानिक, मोहम्मद जासिम इस्लाम उद्दीन, शेख मोहम्मद कैस, अब्दुर रशीद, मोहम्मद जहीरुल इस्लाम, तौहीद खान, हेलाल उद्दीन, मसुदूर रहमान, रसेल हुसैन, रूमा परवीन, यास्मीन सुल्ताना, शादिया बिंता जमान, फरहीन एक्टर भुइयां, आरिफुर रहमान, एकरामुल कबीर राणा, आलमगीर कबीर, सुरैया अख्तर, तस्लीमा नसरीन, नसीम उद्दीन, एस. मो. शाहीन अख्तर।

ब्राजील : फेबरिसियो मासिएल, आंद्रेजा गैली, जोसे गुइराडो नेटो, जेसिका मज़िजनी मेंडिस, कैरीन पासोस।

फ्राँस/स्पेन : लोला बुसुतिल

भारत : रश्मि जैन, मनीष यादव।

इण्डोनेशिया : हरि नुगरोहो, लूसिया रतिह कुसुमादेवी, फिना इत्रियाती, इंदरा रत्न इरावती पट्टिनासारेनी, बेनेडिक्टस हरि जूलियावान, मोहम्मद शोहिबुद्दीन, डोमिंगगस एल्सीड ली, एरियो सेटो, नुरुल ऐनी, आदित्य प्रदान सेतियादी, रुस्फादिया सकतियांती जहजा, हरमंत्यो प्रादिग्तो उटोमो, ग्रेगोरियस रागिल विबावंतो।।

ईरान : रेयहाने जावदी, नियाश डॉलाती, एलहम शुशत्राजिदे, अली राघेब।

पोलैंड : अलेक्सांद्रा बिएरनका, अन्ना टर्नर, जोआना बेडनारेक, सेबेस्टियन सोस्नोव्स्की।

रोमानिया : रालुका पोपेस्कु, राइसा–गैब्रिएला जम्फिरेस्कु, बियांका ऐलेना मिहिला।

रूस : ऐलेना ज्द्रावोम्यस्लोवा, डारिया खोलोडोवा।

ताईवान : वान–जू ली, जी हाओ केर्क, यी–शुहो हुआंग, मार्क यी–वेई लाई, यूं–जो लिन, ताओ–युंग लु, नी–ली।

तुर्की : गुल कोरबासियोग्लू।

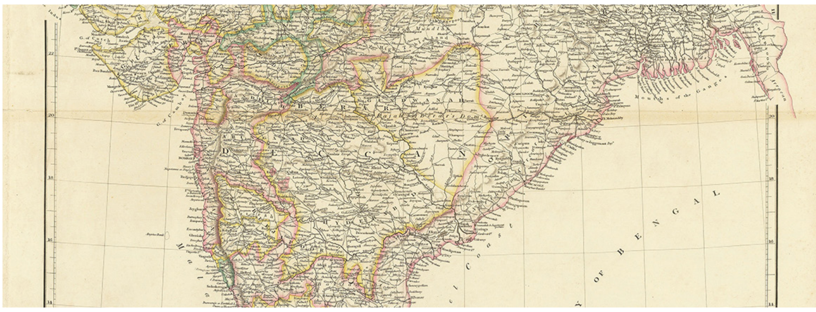

भारतीय समाजशास्त्र *को समर्पित विषयगत खंड, विश्व के सबसे जीवंत समाजशास्त्रीय समुदायों में से एक पर कुछ बहस प्रस्तुत करता है।*

अति–दक्षिणपंथी सामान्यीकरण और कट्टरपंथी मुख्यधारा *पर विषयगत खंड में इस बात की पड़ताल की गई है कि जिसे हमेशा अति–दक्षिणपंथी कहा जाता रहा है, वह किस प्रकार नया सामान्य बन गया है।*

खुले खंड *में ब्राजील के विचारक डार्सी रिबेरो की विरासत, जर्मन संदर्भ में गाजा में युद्ध और ईरानी शहरी क्षेत्र में महिलाओं पर विभिन्न योगदान शामिल हैं।*

कवर पेज का श्रेय : टॉरिनो, मराजो (पारा, ब्राजील) में मछुआरा। फोटो लारा सार्टोरियो गोंकाल्वेस द्वारा, 2025।

GD

सेज प्रकाशन की उदार ग्रांट से ***वैश्विक संवाद*** का प्रकाशन संभव है।

> इस अंक में

संपादकीय 2

> भारतीय समाजशास्त्र

मतभेदों का संवादः स्वदेशी विचार और पश्चिमी समाजशास्त्र
राजेश मिश्रा, भारत द्वारा 5

भारत में समाजशास्त्र के दैनिक अभ्यासः उपनिवेशवाद से मुक्ति का पुनरावलोकन
मैत्रेयी चौधरी, भारत द्वारा 8

दक्षिण भारत में समाजशास्त्र
इंदिरा रामाराव, भारत द्वारा 10

भारतीय समाजशास्त्र में महिलाएँः नारीवादी योगदान, शिक्षणशास्त्र और व्यवहार
अरविंदर अंसारी, भारत द्वारा 12

भारत में सामाजिक आंदोलन अध्ययन पर पुनर्विचार
श्रुति तांबे, भारत द्वारा 15

> कट्टरपंथी मुख्यधारा

चरम दक्षिणपंथी सामान्यीकरण और कट्टरपंथी मुख्यधारा
सबरीना जाजक, जर्मनी, इमानुएल टोस्कानो, इटली, और अन्ना–मारिया मेउथ, जर्मनी द्वारा 18

"कट्टरपंथी" दक्षिणपंथ से मुख्यधारा के दक्षिणपंथ तकः एक बदलती यूरोपीय पार्टी प्रणाली
टेरी गिवेंस, कनाडा द्वारा 21

हाशिये से फीड तकः अति दक्षिणपंथ का मंचीय मुख्यधाराकरण
दमला केसकेकसी, इटली द्वारा 23

पुरुषत्व का अनुकूलनः पुरुषों के आत्म–सुधार नेटवर्क और वैचारिक युद्धक्षेत्र
पाशा दश्तगर्द, संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा 26

फैशन का धुर–दक्षिणपंथ द्वारा सैन्यीकरण
एंड्रिया ग्रिपो, ऑस्ट्रिया द्वारा 29

कैसे धुर दक्षिणपंथ नागरिक समाज पर अतिक्रमण कर रहा है
सुमरिन कालिया, जर्मनी द्वारा 31

लोकलुभावन शासन का नागरिक समाज की वकालत पर प्रभाव
रोबर्टो स्कारामुज्जिनो और सेसिलिया सैंटिली, स्वीडन द्वारा 34

> सैद्धांतिक दृष्टिकोण

इतिहास और सामाजिक सिद्धांत में उपनिवेशवाद विरोध
अनाहीद अल–हरदान, और जूलियन गो, यूएसए द्वारा 37

> खुला अनुभाग

डार्सी रिबेरो और दक्षिण से एक वैश्विक सिद्धांत
अडेलिया मिग्लिएविच–रिबेरो, ब्राजील द्वारा 40

जर्मनी में यहूदी–विरोधी भावना का औजारीकरण और फिलिस्तीनी एकजुटता का बहुआयामी दमन
अज्ञात लेखक, जर्मनी द्वारा 43

खंडित शहर : ईरान में स्त्री–विरोधी नगरीकरण की एक समालोचना
अरमिता खालतबरी लिमाकी, ईरान द्वारा 47

"चरम–दक्षिणपंथी सामान्यीकरण की दोहरी गतिविधि, जो मुख्यधारा के कट्टरपंथीकरण की तरफ ले जाती है, एक व्यापक सामाजिक–राजनैतिक रुझान का संकेत देती है, वह जो परिधि और केंद्र, चरम और मध्यम के मध्य की सीमाओं को धुंधला कर देती है।"

दमला केसकेकसी

> मतभेदों का संवाद : स्वदेशी विचार और पश्चिमी समाजशास्त्र

राजेश मिश्रा, लखनऊ विश्वविद्यालय, भारत द्वारा

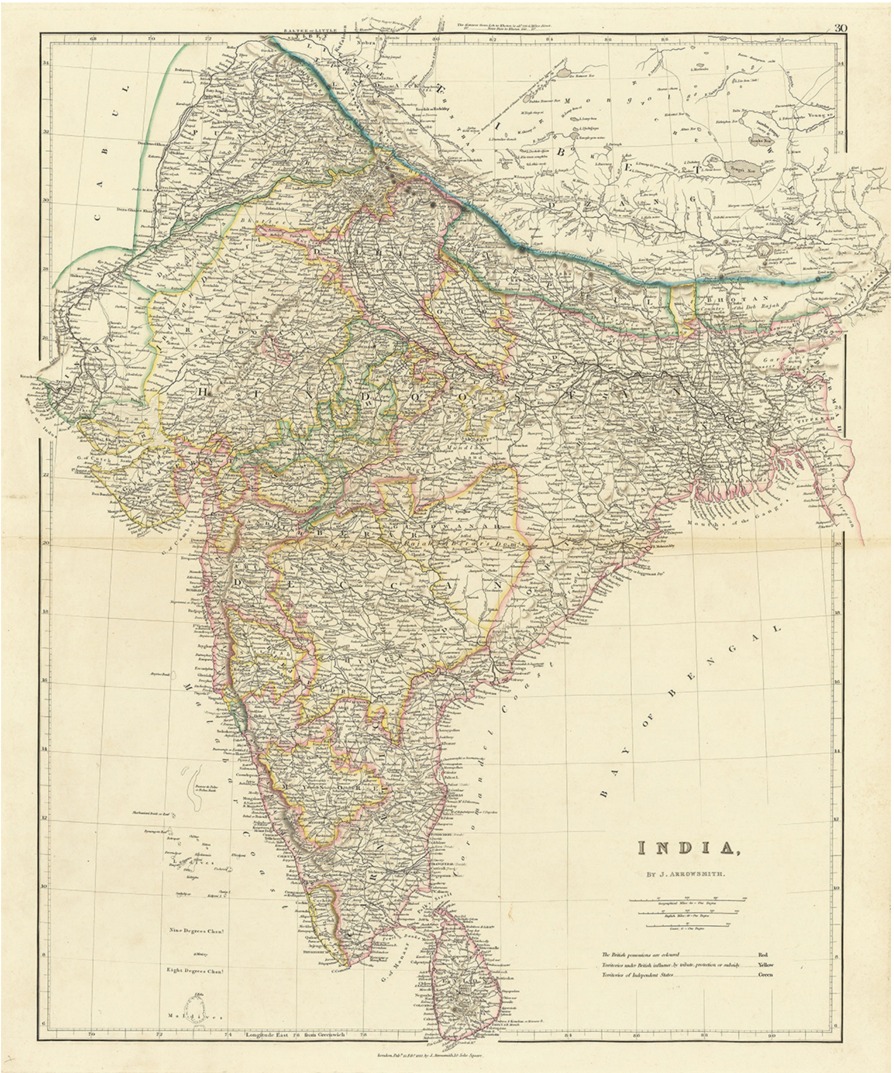

श्रेय : जॉन एरोस्मिथ, सार्वजनिक डोमेन, विकिमीडिया कॉमन्स के माध्यम से।

लगभग 1990 के दशक में उपनिवेशवाद–विरोध और स्वदेशी समाजशास्त्र के इर्द–गिर्द चर्चा लोकप्रिय हुई, हालाँकि, प्रारम्भ से ही भारत में समाजशास्त्र ने स्वदेशी अवधारणाओं और दृष्टिकोणों के महत्व पर जोर दिया है। इस जोर को दो संदर्भों में देखा जा सकता हैः पहला, सामाजिक–राजनीतिक संदर्भ और दूसरा, बौद्धिक–वैचारिक संदर्भ।

> स्वतंत्रता संग्राम और पश्चिमी बौद्धिक परंपराओं के मध्य अंतर्संबंध पर आधारित समाजशास्त्र

भारत में एक अकादमिक विषय के रूप में समाजशास्त्र का विकास बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ, जो फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी के अनुभवों के समानांतर था। भारत में पहला समाजशास्त्र विभाग

>>

उसी वर्ष 1919 में स्थापित किया गया था जब म्यूनिख के लुडविग मैक्सिमिलियन विश्वविद्यालय में मैक्स वेबर द्वारा समाजशास्त्र विभाग की स्थापना की गई थी। यद्यपि, बॉम्बे विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग बनाने की योजना प्रथम विश्व युद्ध से पहले 1914 में बनाई गई थी। पहली भारतीय समाजशास्त्रीय पत्रिका, *द इंडियन सोसिओलॉजिस्ट*, जिसकी स्थापना भारतीय स्वतंत्रता सेनानी श्यामजी कृष्ण वर्मा ने की थी, 1905 में लंदन में प्रकाशित होना शुरू हुई, उसी वर्ष सोशियोलॉजिकल पेपर्स जारी किए गए, जिसके कारण उत्तरोत्तर में 1907 में *द सोशियोलॉजिकल रिव्यू* की शुरुआत हुई, जो ब्रिटेन से समाजशास्त्र की पहली पत्रिका थी। 1920 के दशक में बड़ौदा के एक ब्रिटिश मूल के अमेरिकी दार्शनिक द्वारा भारत की एक और पत्रिका, *द इंडियन सोशियोलॉजिकल रिव्यू* स्थापित की गई थी। संपादकों की अलग–अलग पृष्ठभूमि पर ध्यान देना जरूरी है। भारत में समाजशास्त्र की नींव स्वतंत्रता संग्राम से उपजी वैचारिक प्राथमिकताओं और पश्चिमी बौद्धिक परंपराओं के बढ़ते प्रभाव के बीच एक गतिशील अंतर्संबंध द्वारा चिह्नित है।

भारत पर ब्रिटिश शासन होने और विदेशी मान्यताओं, ज्ञान के एजेंडे और शिक्षा प्रणालियों के थोपे जाने के बावजूद, 1920 के दशक में बड़े राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन हुए, जिसमें ब्रिटिश शासन के खिलाफ एकता के विचार की राजनीतिक चेतना में उछाल, उपनिवेशवाद विरोधी स्वतंत्रता आंदोलन, किसान आंदोलन और मजदूर हड़तालें शामिल थीं। इस दशक में दमनकारी रौलट अधिनियम और 1919 के स्वशासी भारत सरकार अधिनियम के कार्यान्वयन के साथ–साथ खिलाफत, असहयोग आंदोलन जैसे आंदोलनों का उदय और श्रम संघों की स्थापना भी हुई। 1920 में अखिल भारतीय श्रम संघ कांग्रेस की स्थापना हुई, उसके बाद 1925 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ। 1920 के दशक के उत्तरार्ध में जैसे–जैसे स्वतंत्रता आंदोलन ने गति पकड़ी, इसने बड़े समूहों को संगठित करना और बड़े विरोध प्रदर्शनों का नेतृत्व करना शुरू कर दिया। इसके अलावा, 'निम्न जातियों' का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठनों ने 'उच्च जातियों' के प्रभुत्व की आलोचना कर और मद्रास विधान परिषद में कुछ आरक्षित सीटें हासिल कर अपनी उपस्थिति दर्ज कराना शुरू कर दिया।

इन सभी लामबंदी, आंदोलनों और संगठनों का नेतृत्व मुख्य रूप से यूरोपीय परंपराओं में शिक्षित एक उभरते मध्यम वर्ग द्वारा किया गया था, जिसने प्रतिरोध के लिए अपनी स्वदेशी विरासत से ताकत हासिल की। शिक्षित मध्यम वर्ग का एक अन्य भाग शिक्षा और बौद्धिक गतिविधियों से संबंधित पेशों में संलग्न था। राजनीतिक उथल–पुथल की इस पृष्ठभूमि के मद्देनजर, बौद्धिक स्तर पर मानविकी, कला, सामाजिक विज्ञान और राजनीतिक सिद्धांतों में स्वदेशी दृष्टिकोणों को एकीकृत करने के प्रयासों को देखा जा सकता है।

> बहुमुखी दर्शन का एक लंबा इतिहास

समाजशास्त्र के स्वदेशीकरण को एक दार्शनिक और बौद्धिक संदर्भ के अंतर्गत भी गढ़ा जा सकता है। भारत की दार्शनिक और बौद्धिक विरासत सबसे पुरानी और सबसे विविध में से एक है, जिसमें कई विचारधाराएँ और विषयों का एक व्यापक स्पेक्ट्रम शामिल है। ऐतिहासिक रूप से, भारतीय दर्शन न केवल भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक धाराओं द्वारा आकारित हुआ है बल्कि इसने उन पर प्रभाव भी डाला है। भारतीय दर्शन के विभिन्न स्कूलों ने रोजमर्रा के सामाजिक जीवन, मानदंडों और मूल्यों को आकार देने के तरीकों पर जोर देते हुए तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, नैतिकता और आध्यात्मिकता पर अद्वितीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं।

मध्यकालीन युग के दौरान, भारतीय दर्शन ने महत्वपूर्ण विकास और भक्ति और सूफी आंदोलनों के उदय के साथ ही हिंदू और मुस्लिम विचारों के बीच एक रचनात्मक संलयन को अनुभव किया जिससे एक अधिक विविध सांस्कृतिक परिदृश्य सामने आया। हाल के दिनों में, सार्वजनिक विद्वानों और शख्सियतों ने प्राचीन अंतर्दृष्टि को मौजूदा मुद्दों से जोड़ा है, और सार्वभौमिक भाईचारे और अहिंसक प्रतिरोध जैसे विचारों की वकालत की है। भारतीय दर्शन की बहुमुखी प्रकृति विभिन्न तत्वों के समृद्ध अंतर्संबंध का प्रतिनिधित्व करती है, जिनमें से प्रत्येक अस्तित्व, समाज और ब्रह्मांड की गहरी समझ में योगदान देता है। यह विरासत न केवल अतीत को दर्शाती है बल्कि वर्तमान को समझने का भी प्रयास करती है। इसने विशेष रूप से भारत में समाजशास्त्र के विकास को प्रभावित किया है और साथ ही राजनीतिक और वैचारिक सोच को भी अधिक व्यापक रूप से आकारित किया है।

> भारत के लिए समाजशास्त्र या भारत का समाजशास्त्र

इन दो संदर्भों में, भारतीय समाजशास्त्र ने उस युग के शैक्षणिक केंद्रों, बॉम्बे (मुंबई), कलकत्ता (कोलकाता) और लखनऊ पर केंद्रित स्वदेशीकरण, संदर्भीकरण और यूरोपीयकरण की चर्चाओं में लगातार भाग लिया है। प्रारंभ में, भारत में समाजशास्त्र ने अपने संस्थागत विकास में एक अधीनस्थ स्थान पर कब्जा कर लिया, जिसे अक्सर नृविज्ञान, अर्थशास्त्र, दर्शन और नागरिक शास्त्र की तुलना में एक अतिरिक्त विषय के रूप में देखा जाता था। हालाँकि, बॉम्बे (मुंबई), लखनऊ और कलकत्ता (कोलकाता) में समाजशास्त्रीय प्रथाओं ने भारतीय वास्तविकताओं में आधारित अवधारणाओं और दृष्टिकोणों का उपयोग करते हुए एक स्वतंत्र प्रक्षेपवक्र स्थापित करने की कोशिश की, साथ ही अपने अद्वितीय दृष्टिकोणों को भी संरक्षित किया।

इस संबंध में, व्यापक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों के भीतर स्वदेशी दृष्टिकोणों को एकीकृत करने के उद्देश्य से तीन अलग–अलग दृष्टिकोणों की पहचान की जा सकती है। पहला दृष्टिकोण परंपरावादी है और पश्चिमी समाजशास्त्रीय प्रतिमानों को पूरी तरह से खारिज करता है। वह यह दावा करता है कि भारतीय समाज की अनूठी विशेषताओं और विशिष्ट प्रकृति को केवल एक लंबे समय से स्थापित शास्त्रीय दार्शनिक दृष्टिकोण और स्वदेशी अवधारणाओं को नियोजित करके ही समझा और वर्णित किया जा सकता है, जिन्हें अब भारतीय (हिंदू) ज्ञान प्रणाली के रूप में संदर्भित किया जाता है। दूसरा दृष्टिकोण पूर्ण रूप से समाजशास्त्रीय है और भारतीय समाज की विशेषताओं को सामान्यीकृत और निर्दिष्ट दोनों करने के लिए पश्चिमी समाजशास्त्रीय संरचनाओं और पद्धतियों को लागू करने पर केंद्रित है। भारतीय दार्शनिक परिपेक्ष्य और भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता को एकीकृत करते समय पश्चमी सामाजिक सिद्धांतों और दार्शनिक प्रथाओं के प्रभाव को मानते हुए तीसरे परिपेक्ष्य का उद्देश्य भारतीय परम्पराओं के गतिशील पक्षों को पश्चिमी परम्पराओं के साथ एकीकृत करना है। इसे भारतीय परंपरा के तर्कसंगतीकरण की व्याख्या करने के लिए वेदांत दर्शन, व्याख्याशास्त्र और मार्क्ससवादी द्वंद्ववाद को त्रिकोणीय बनाने के प्रयासों में देखा जा सकता है।

जहाँ पहला दृष्टिकोण एक बंद एकालाप का प्रतिनिधित्व करता है, तीसरा स्वदेशी दृष्टिकोणों और पश्चिमी समाजशास्त्र के बीच संवाद को बढ़ावा देता है, जिससे वैश्विक संवाद पनपता है। यह स्वीकार करना प्रासंगिक है कि दो विपरीत दृष्टिकोणः "भारत के लिए समाजशास्त्र" और "भारत का समाजशास्त्र" का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख भारतीय समाजशास्त्रियों के मध्य एक चित्ताकर्षक

>>

बहस सामने आई। यह संवाद इस बात पर केंद्रित है कि क्या समाजशास्त्र को विशेष रूप से भारतीय समाज के अध्ययन और व्याख्या पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए या इसे व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जिसमें सभी समाज शामिल हों, जिनमें से भारत भी एक है। हाल ही में, उत्तर–औपनिवेशिकता पर एक चर्चा का आह्वान किया गया है, जो शायद अभी तक सफल नहीं हुई है।

> स्वदेशी और पश्चिमी समाजशास्त्र के बीच एक सतत और विकसित वार्तालाप

स्वतंत्रता के बाद की अवधि में, पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों और सांस्कृतिक प्रथाओं को स्वीकार करते हुए, और साथ ही समकालीन आर्थिक परिवर्तनों, राजनीतिक बदलावों और सामाजिक परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए पश्चिमी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों की उपयोगिता की सराहना करते हुए सामाजिक विज्ञानों में यूरोपीय पद्धतियों के साथ स्वदेशी दृष्टिकोणों के एकीकरण ने भारत में महत्व प्राप्त किया है। अक्सर पश्चिमी समाजशास्त्रीय फ्रेमवर्क भारत में पाई जाने वाली विशिष्ट सामाजिक व्यवस्थाओं को अनदेखा कर देते हैं, जो इस बात पर जोर देता है कि बौद्धिक स्वायत्तता को बढ़ावा देने के लिए उत्तर–औपनिवेशिक भारत में शैक्षणिक दृष्टिकोणों और विषयों को उपनिवेशवाद से मुक्त करने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में, भारतीय समाजशास्त्रियों की अंतर्दृष्टि सांस्कृतिक प्रथाओं, विविधताओं, ग्रामीण समुदायों, जाति संरचनाओं, नातेदारी संबंधों, जातीय पहचान, जातिगत भेदभाव, कृषि आंदोलनों, सामाजिक सक्रियता, सामाजिक परिवर्तनों और आर्थिक प्रगति की जांच करने के महत्व पर जोर देती है। यह बात स्वतंत्रता के बाद की अवधि में विशेष रूप से सत्य थी, जिसमें नवीन अवधारणाओं और मॉडलों का प्रस्ताव किया गया, जो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक दृष्टिकोणों के माध्यम से भारतीय समाज की समझ को बढ़ावा देते थे।

यद्यपि हिंदू ज्ञान प्रणाली विशिष्ट है और विभिन्न पूर्वी दृष्टिकोणों के साथ रचनात्मक रूप से एकीकृत होता है, पश्चिमी ज्ञान प्रणाली और इसके व्यावहारिक उपयोग में एक निर्विवाद आकर्षण मौजूद है। इस संदर्भ में, स्वदेशीकरण और संदर्भीकरण की एक मजबूत परंपरा के बावजूद, पश्चिमी समाजशास्त्र के विषय, अवधारणाएँ, पद्धतियां और सिद्धांत प्रचलित रहते हैं। यह दावा किया जा सकता है कि स्वदेशी समाजशास्त्र और पश्चिमी समाजशास्त्र के बीच बातचीत जारी है, जो विषय की प्रगति को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण के मध्य स्वदेशीकरण की प्रक्रिया विकसित हो रही है, जिसमें सबाल्टर्न और आलोचनात्मक सिद्धांत दृष्टिकोणों के भीतर तैयार किए गए दलित अध्ययन, आदिवासी अध्ययन और लिंग अध्ययन जैसे उभरते शोध क्षेत्र शामिल हैं। आधुनिकता की ओर संक्रमण की दिशा में अग्रसर भारतीय समाजशास्त्री पारंपरिक समाजों के बारे में स्वदेशी अंतर्दृष्टि प्रदान करके वैश्विक समाजशास्त्र में योगदान दे रहे हैं। यद्यपि पारंपरिक रूप से समाजशास्त्र पश्चिम में विकसित एक सामाजिक विज्ञान रहा है और यह काफी हद तक पश्चिमी प्रतिमानों से प्रभावित है, यह दावा करना भ्रामक होगा कि अपने पूरे इतिहास में भारतीय समाजशास्त्र पर पश्चिमी ढांचे निर्णायक रूप से हावी रहे हैं, चाहे वह औपनिवेशिक काल के दौरान हो या स्वतंत्रता के बाद।

इसकी शुरुआत से ही स्वदेशी दृष्टिकोण और विचारों के महत्व को पहचानने की पहल की गई है। यह उन कार्यों में मौजूद दृष्टिकोणों की विविधता में स्पष्ट है जो या तो भारतीय ज्ञान परंपराओं पर आधारित हैं या भारतीय संदर्भ में निहित रहते हुए पश्चिमी समाजशास्त्रीय अवधारणाओं से आकारित हैं। समकालीन प्रथाओं और वैश्विक प्रभावों वाले स्वदेशी दृष्टिकोणों को पारंपरिक मूल्यों के साथ मिलाने में जारी कठिनाइयों के बावजूद, स्वदेशी समाजशास्त्र को मजबूत करने और स्वदेशी अंतर्दृष्टि को वैश्विक समाजशास्त्र में एकीकृत करने के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक हैं। ■

सभी पत्राचार राजेश मिश्रा को <rajeshsocio@gmail.com> पर प्रेषित करें।

> भारत में समाजशास्त्र के दैनिक अभ्यास: उपनिवेशवाद से मुक्ति का पुनरावलोकन

मैत्रेयी चौधरी, अध्यक्ष, भारतीय समाजशास्त्र संघ और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत द्वारा

भारत में, समाजशास्त्र और नृविज्ञान के विषयों की शुरुआत, उनके घनिष्ठ लेकिन विवादित संबंधों के साथ, तब हुई जब भारत एक ब्रिटिश उपनिवेश था। इसलिए भारत में उपनिवेशवाद और समाजशास्त्र के बीच संबंध आवश्यक रूप से गहरे और जटिल हैं। हाल के दशकों में, विषयगत इतिहास के साथ–साथ उपनिवेशवाद–विरोधी विचार और सामाजिक सिद्धांत के बीच संबंधों पर बौद्धिक कार्यों का एक समूह उभरा है।

स्थानीय स्तर पर भारतीय समाजशास्त्र के भीतर, हालांकि, विदेशी अवधारणाओं की सीमाओं और स्वदेशिकता की तलाश पर बहस का एक लंबा इतिहास रहा है, जो कि *सोशियोलॉजिकल बुलेटिन,* कंट्रिब्यूशंस टू इंडियन सोशियोलॉजी, और सेमिनार में उपलब्ध बहस पर एक सरसरी नजर डालने से भी स्पष्ट है।

वैश्विक स्तर पर, वि–औपनिवेशीकरण के बारे में चर्चा हो रही है; लेकिन विडंबना यह है कि भारत जैसे पूर्व उपनिवेशित देश में यह अपेक्षाकृत हाल की बात है। ये घटनाक्रम जिन प्रश्नों को उठने पर मजबूर करते हैं वो हैं: क्या भारतीय समाजशस्त्र के अंतर्गत होने वाली खोज को 'वि–औपनिवेशीकरण', आज कल जिस तरह से इस शब्द को काम में लिया जा रहा है, के रूप में माना जा सकता है? और क्या अकादमिक औपनिवेशीकरण का प्रतिरोध करने के लम्बे समय से चल रहे प्रयासों का अर्थ है कि भारतीय समाजशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि पश्चिमी श्रेणियों कि आलोचना करने का क्या अर्थ है ?

दूसरे प्रश्न का उत्तर शायद पूरी तरह से नहीं है। भारत में कई शुरुआती समाजशास्त्री राष्ट्र निर्माण, सामाजिक सुधार और सबसे महत्वपूर्ण रूप से विज्ञान के मूल्य के बारे में एक जैसी चिंता रखते हैं। हालांकि, एक और बौद्धिक धारा जो हमेशा मौजूद थी लेकिन लंबे समय से दबी हुई थी, वह थी भारत की अनूठी संस्कृति की वकालत जो अपनी स्वयं की विश्लेषणात्मक श्रेणियों की मांग करती थी। उस दावे के भीतर भी, महत्वपूर्ण मतभेद मौजूद थे। हालांकि, हिंदुत्व के उदय के साथ ही एक आधिपत्य वाली भारतीय ज्ञान प्रणाली (आईकेएस) के विचार ने शक्ति और वैधता हासिल कर ली है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके साथ ही वि–उपनिवेशवाद की अवधारणा का भी उपयोग हुआ है, जो इस प्रश्न को उठाता है कि: हम वि–उपनिवेशवाद को कैसे समझते हैं?

> "विउपनिवेशवाद हमें बोलने के लिए एक भाषा प्रदान करता है"

> विउपनिवेशवाद को बढ़ावा देना

विउपनिवेशवाद पर लेखन से पता चलता है कि विउपनिवेशवाद एक विलक्षण बात नहीं है; यह "करने" के बारे में अधिक है, जिसे क्रिया के रूप में बेहतर ढंग से समझा जा सकता है और इसलिए यह एक प्रक्रिया है। पश्चिम में कक्षा और पाठ्यक्रम को विउपनिवेशवाद से मुक्त करने के प्रयासों को पढ़ने से मुझे अपने स्वयं के शैक्षणिक जुड़ाव पर पुनर्विचार करने का मौका मिला। इससे मेरे मन में यह सवाल उठा कि क्या विउपनिवेशीकरण एक ऐसा संबोध है जिसे मैं पीछे से जोड़ सकती हूँ। मैं दो तरह के अनुभवों से प्रेरणा लेती हूँ: भारत में लिंग पर पाठ्यक्रम पढ़ाना और नारीवाद पर लिखना, और भारत में सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाओं पर पाठ्यक्रम पढ़ाना। संदर्भ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए, मैंने 1970 के दशक के अंत में एक छात्रा के रूप में विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और 1980 के दशक के अंत में भारत में पढ़ाना शुरू किया।

> लिंग के बारे में शिक्षा देना, नारीवाद को स्वीकार करना

हमारे स्थानीय रोजमर्रा के अकादमिक जगत में ग्लोबल नॉर्थ की एक व्यापक उपस्थिति रही है। हमारे पाठ्यक्रम में इसकी उपस्थिति जीवन से भी बड़ी थी। 1990 के दशक की शुरुआत में महिलाओं और समाज पर एक पाठ्यक्रम पढ़ाते समय, मुझे पश्चिमी पाठ्यपुस्तकों में उदारवादी, समाजवादी और कट्टरपंथी नारीवादी सिद्धांतों के अनिवार्य संदर्भ के साथ शुरुआत करने में कुछ असहजता महसूस हुई। मुझे इतिहास से शुरू करना अधिक उचित लगा। हालाँकि, पार्श्व दृष्टि डालने पर ही मुझे यह पता चला कि इतिहासीकरण क्यों महत्वपूर्ण था, क्योंकि उस समय उपलब्ध सैद्धांतिक ढाँचों में अलग–अलग इतिहासों के लिए कोई जगह नहीं थी। बहुल आधुनिकताओं के बारे में चर्चा अभी भी हमारे तटों तक नहीं पहुँची थी और न ही यूरोप का प्रांतीयकरण हुआ था। तीसरी दुनिया का

>>

नारीवाद अभी तक वैश्विक उत्तर में अंतर्राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य अतिरिक्त हिस्सा नहीं बन पाया था। हमारा वैश्विक इतिहास भिन्न तरह से उभरा है के तर्क को रखने के लिए उचित भाषा के अभाव में हम अभी भी संगर्ष कर रहे थे। इसलिए हमारी आधुनिकता अलग थी, ठीक वैसे ही जैसे हमारे नारीवादी इतिहास थे।

भारत में नारीवाद का एक वैचारिक विवरण लिखने के लिए संघर्ष करते हुए, मैं उन रोजमर्रा की चुनौतियों से सीखने की प्रक्रिया से गुजरी जिनका मैं सामना करती थी। पहला यह विश्वास था कि भारत में नारीवाद पर बहस नहीं होती। पीछे मुड़कर देखने पर, मुझे समझ में आया कि इसका मतलब यह था कि हमारे पास *द अनहैप्पी मैरिज ऑफ मार्क्सिस्म एंड फेमिनिज्म* के समकक्ष कोई बहस नहीं थी। दूसरा, मुझे एहसास हुआ कि स्पष्ट लेकिन अक्सर अनदेखा किया जाने वाला तथ्य यह है कि, जहाँ पश्चिमी नारीवादियों के लिए गैर–पश्चिमी नारीवाद के साथ जुड़ना या न जुड़ना एक विकल्प है जिसे वे चुन सकती हैं, गैर–पश्चिमी नारीवादियों या नारीवाद विरोधियों के लिए ऐसा कोई स्पष्ट विकल्प उपलब्ध नहीं है। हमारे लिए, आधुनिकता में हमारा प्रवेश उपनिवेशवाद के माध्यम से हुआ है, जैसा कि राष्ट्रवाद या लोकतंत्र, मुक्त बाजार या समाजवाद, मार्क्सवाद या नारीवाद जैसे विचारों और संस्थानों का पूरा पैकेज था।

तीसरा, यह मान्यता थी कि ज्ञान के प्रसार के संदर्भ बदल गए हैं। उपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद विरोधी प्रतिरोध के दौरान पश्चिमीध्आधुनिक वैचारिक प्रभाव की प्रकृति सीधे राजनीतिक थी, जो सामाजिक आंदोलनों से जुड़ी थी – चाहे वह मध्यम वर्ग या जाति–विरोधी समाज सुधारक, राष्ट्रवादी, वामपंथी या आदिवासी के हों। एक विशिष्ट पहचान को बनाने के प्रयास करते हुए वे इतिहास बनाने की कोशिश करते थे। महिला आंदोलन में शामिल लोगों के लिए, इसे अक्सर इनकार के रूप में व्यक्त किया जाता था। "मैं नारीवादी नहीं हूँ" एक ऐसा कथन था जो अक्सर उन महिलाओं से सुना जाता था जो प्रमुख सार्वजनिक हस्तियाँ थीं, जिससे यह सवाल उठता था कि क्या हमें आत्म–परिभाषाओं के अनुसार चलना चाहिए या समाज में उनके कार्यों और परिणामों का आकलन कर के।

चौथा, इसलिए, यह स्वीकार करना कि नारीवाद पर बहस हो रही थी, लेकिन अलग तरीके से, इसमें समय लगा, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि मतभेदों को व्यक्त करने के प्रयास ऐसे संदर्भ में हो रहे थे जो मतभेद की भाषा या इसे दी गई हालिया राजनीतिक वैध्ाता से अनभिज्ञ थे। वेअवधारणाएं जो अनायास ही जुबान और कलम की नोक पर आ जाती हैं, जैसे 'लिंग निर्माण', 'प्रदर्शनशीलता', 'पितृसत्ता', और 'अंतर्विभाजकता', एक सदी पहले विभिन्न लेबलों के अंतर्गत आती थीं। अधिकांश भारतीय नारीवादियों को यह बात बाद में ही पता चली कि वे अंतर्विभाजक विश्लेषक थे।

> भारत में सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाओं का शिक्षण

लम्बे समय तक भारतीय समाजशास्त्र पश्चिम द्वारा उत्पन्न अवध्ाारणाओं के साथ निरंतर तालमेल बनाए रखने की स्थिति में था। इस प्रकार, भले ही आधुनिकीकरण का ढांचा दशकों तक भारतीय समाजशास्त्र पर हावी रहा, लेकिन घरेलू रूप से उत्पन्न अवधारणाओं को विकसित करने की इच्छा प्रबल थी। मुझे कई सेमिनार याद हैं जहाँ संस्कृतिकरण को प्रामाणिक अवधारणा–निर्माण के उदाहरण के रूप में चिह्नित किया जाता था, और जहाँ नारीवादी और जाति–विरोधी प्रश्न, पहले के मार्क्सवादी प्रश्नों की तरह, अकादमिक समाजशास्त्र के दायरे से बाहर देखे जाते थे।

मेरी समाजशास्त्र की कक्षा में, हमने आधुनिकीकरण को परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में जाना जो पश्चिमी यूरोप और उत्तर अमेरिका में विकसित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं की तरफ परिवर्तन था और वे जो वैश्विक रूप से भी फैली। हमने यह भी पढ़ा कि एक सांस्कृतिक अंतराल है, लेकिन समय के साथ हम भी ऐसी संस्थाओं का विकास करेंगे जो अधिक आर्थिक रूप से उन्नत देशों के समानांतर होंगी, जो अंततः समाजों के वैश्विक अभिसरण की ओर ले जाएंगी। उपनिवेशवाद को नजरअंदाज कर दिया गया। यह उस देश में थोड़ा अजीब था, जहां हम दादाभाई नौराजी (1825–1917) और उनकी पुस्तक *पॉवर्टी एंड अन–ब्रिटिश रूल इन इंडिया* के बारे में पढ़ते हुए बड़े हुए थे, जो असमान विकास और भारतीय 'धन निकास' के सिद्धांत की प्रारंभिक आलोचना थी। इस प्रकार, जब अविकसितता और आंद्रे गुंडर फ्रैंक के सिद्धांत पेश किए गए, तब भी वे बड़े पैमाने पर संरचनात्मक कार्यात्मक ढांचे के अतिरिक्त थे, जिसने भारतीय समाजशास्त्र के लिए टेम्पलेट के रूप में काम किया।

आधुनिकीकरण सिद्धांत से मुख्य सीख 'पारंपरिक संरचनात्मक और सांस्कृतिक विशेषताओं' और 'विकास' के बीच संगतता/असंगतता थी। आधुनिक भारत के इतिहासकारों ने दिखाया है कि पश्चिम में आधुनिकीकरण ने शहरीकरण को बढ़ावा दिया, जबकि भारत में ब्रिटेन से निर्मित वस्तुओं की बाढ़ के साथ हथकरघा उद्योग के विनाश ने बुनकरों की दुर्दशा को जन्म दिया, जो फिर ग्रामीण और कृषि क्षेत्रों में फैल गए। उनमें से कुछ कैरिबियन या ब्रिटिश, डच और फ्रेंच गुयाना जैसे दूर के देशों में चीनी और कपास के बागानों में काम करने वाले बंधुआ मजदूरों का हिस्सा बन गए। जब मैंने भारत में आधुनिकीकरण पढ़ाना शुरू किया, तो मुझे सांस्कृतिक पिछड़ेपन की जांच से दूर हटना पड़ा और कथानक को जटिल बनाना पड़ाय और उपनिवेशवाद के माध्यम से आधुनिकता के साथ हमारे टकराव की ऐतिहासिक विशिष्टताओं से निपटना पड़ा। हमें अमूर्त सिद्धांत से हटकर इतिहास की ओर जाना होगा, जैसा कि नारीवाद के साथ मेरा अनुभव रहा।

> अंतिम नोट्स

यह केवल पार्श्व दृष्टि में ही समझ में आता है कि ऐतिहासिक विवरणों का सहारा लेना हमारे लिए इतना महत्वपूर्ण क्यों था और क्यों वैश्विक दक्षिण में किए गए कार्यों का इतिहास सिद्धांतीकरण का इतिहास था। हमारी कहानियाँ मौजूदा सैद्धांतिक ढाँचों के भीतर मौजूद नहीं थीं, क्योंकि उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन और विचार मुख्यधारा के समाजशास्त्र में छिपे रहे। चर्चा के शब्दों और विनियोग के खतरों से सावधान रहते हुए, विउपनिवेशवाद हमें बोलने के लिए एक भाषा प्रदान करता है। ■

सभी पत्राचार सीधे मैत्रेयी चौधरी को <maitrayeec@gmail.com> पर प्रेषित करें।

> दक्षिण भारत में समाजशास्त्र

इंदिरा रामाराव, भारतीय समाजशास्त्र सोसायटी की पूर्व अध्यक्ष और मैसूर विश्वविद्यालय, भारत द्वारा

दक्षिण भारत में समाजशास्त्र की शुरुआत बीसवीं सदी के दूसरे दशक में मानी जा सकती है। दक्षिण भारत में समाजशास्त्र का इतिहास यहाँ तीन समय अवधियों में विभाजित करके प्रस्तुत किया गया हैः 1900—1950, 1950—2000, और 2000—2024 (लेखन के समय तक)। इसमें पांच राज्य आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु और केंद्र शासित प्रदेश पुडुचेरी शामिल हैं।

> 1900—1950

सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए समाजशास्त्रीय अंतर्दृष्टि प्राप्त करने की आवश्यकता वर्ष 1915 में ही उत्पन्न हो गई थी, जब कैम्ब्रिज के अर्थशास्त्री गिल्बर्ट स्लेटर मद्रास विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में विभाग के अध्यक्ष के रूप में आये। स्लेटर का मानना था कि भारतीय छात्रों को अर्थशास्त्र की शिक्षा तभी पूरी होगी जब वे समाज के बारे में जानेंगे और उससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि वे भारत के ग्रामीण समुदायों के बारे में जानेंगे। भारतीय गांवों पर उनका अध्ययन, सम साउथ इंडियन विलेजेज, 1918 में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया था। मैं इसे, जिसे हम आज अंतःविषयक या बहुविषयक अध्ययन के रूप में प्रशंसा करते हैं, की आधारशिला रखने के रूप में देखती हूँ।

इसी तरह का एक प्रयास तब शुरू हुआ जब एआर वाडिया 1917 में विल्सन कॉलेज, मुंबई से मैसूर विश्वविद्यालय आए और महाराजा कॉलेज में दर्शनशास्त्र विभाग का नेतृत्व किया। दर्शनशास्त्र को समाजशास्त्रीय अभिविन्यास देने में वाडिया की गहरी रुचि थी, एक विचार जिसका समर्थन विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति ब्रजेंद्र नाथ सील ने किया था, जिसके कारण समाजशास्त्र सामाजिक दर्शन में स्नातक पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग बन गया। समाजशास्त्रीय अध्ययनों को बढ़ावा देने के वाडिया के फैसले ने वर्ष 1928 में भारत में समाजशास्त्र में पहला स्नातक कार्यक्रम प्रारम्भ करने का भी मार्ग प्रशस्त किया। दक्षिण भारत में समाजशास्त्र के इतिहास में एक और मील का पत्थर 1949 में समाजशास्त्र में एक वर्षीय मास्टर कार्यक्रम की शुरुआत थी।

हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र में स्नातक पाठ्यक्रम अर्थशास्त्र विभाग में स्थित था, और यह केवल शैक्षणिक वर्ष 1937—38 में ही था कि इस विषय को अपनी अलग पहचान मिली। 1946 में समाजशास्त्र को एक पूर्ण विकसित विभाग का दर्जा मिला, जब एक स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया। 1956 में भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के समय, मैसूर और उस्मानिया ही दक्षिण भारत में मास्टर पाठ्यक्रम प्रदान करने वाले एकमात्र विश्वविद्यालय थे।

केरल राज्य में, समाजशास्त्र को एक सहायक विषय के रूप में पढ़ाना 1930 के दशक में प्रारम्भ हुआ, इसे कॉलेजों में पढ़ाया जाता था और अर्थशास्त्र, इतिहास और राजनीति विज्ञान के छात्रों को पढ़ाया जाता था। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि संबंधित सभी संस्थान मद्रास विश्वविद्यालय से संबद्ध थे।

शोध परिदृश्य पर, मैं ऑस्ट्रियाई नृवंशविज्ञानी क्रिस्टोफ वॉन फ्यूरर—हेमेंडॉर्फ द्वारा किए गए अध्ययनों का विशेष उल्लेख करना चाहती हूँ, जो 1945 में उस्मानिया विश्वविद्यालय में मानद प्रोफेसर और निजाम सरकार के सलाहकार के रूप में शामिल हुए थे। विभाग में उनके आगमन से न केवल उस्मानिया विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर कक्षाएं प्रारम्भ हुईं, बल्कि राज्य के बड़े आदिवासी क्षेत्रों में काफी मात्रा में शोध गतिविधियाँ भी शुरू हुईं। वॉन फ्यूरर—हेमेंडॉर्फ द्वारा किए गए कुछ सबसे प्रसिद्ध क्षेत्र अध्ययन चेंचू, भील और राज गोंड आदिवासी समुदायों के बीच किए गए थे।

> 1950—2000

संस्थानों की संख्या और अनुसंधान गतिविधियों में वृद्धि दोनों के संदर्भ में यह दक्षिण भारत में समाजशास्त्र के इतिहास में सबसे सक्रिय अवधि थी। विश्वविद्यालयों के साथ—साथ महाविद्यालयों में भी समाजशास्त्र की पढ़ाई खूब फली—फूली। जहाँ विश्वविद्यालय विभागों में स्नातकोत्तर और शोध पाठ्यक्रम उपलब्ध थे, वहीं महाविद्यालयों में समाजशास्त्र में स्नातक पाठ्यक्रम उपलब्ध थे।

1950 और 2000 के बीच, कर्नाटक में छह विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम शुरू किया गया था और इनमें से प्रत्येक विश्वविद्यालय में ऐसे सम्बद्ध महाविद्यालय थे जो स्नातक स्तर पर समाजशास्त्र की पढ़ाई कराते थे। वर्ष 1970 में कर्नाटक के बेंगलुरु में ICSSR के प्रमुख संस्थान, इंस्टिट्यूट फॉर सोशल चेंज की स्थापना हुई।

अविभाजित आंध्र प्रदेश राज्य में, तमिलनाडु में सात विश्वविद्यालयों और दस संस्थानों में समाजशास्त्र के स्नातकोत्तर विभाग शुरू किए गए, जिनमें से आठ विश्वविद्यालयों में और एक—एक निजी महाविद्यालय और एक संस्थान में थे। पांडिचेरी के केंद्रीय विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग का उद्घाटन वर्ष 1993 में किया गया था।

केरल ने एक अनूठी तस्वीर पेश की, जहाँ महाविद्यालयों में समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम पेश किए गए, और 1969 में ही यह विषय विश्वविद्यालय परिदृश्य में आया। ध्यान देने वाली बात यह है कि जिन महाविद्यालयों ने स्नातकोत्तर स्तर पर समाजशास्त्र

>>

“दक्षिण के समाजशास्त्र विभागों में भारतीय समाज पर अग्रणी कार्य किए गए”

की पेशकश की, उन्होंने एक शोध संस्कृति विकसित की, जिसे आम तौर पर स्नातकोत्तर विभागों का विशेषाधिकार माना जाता है। इसका एक प्रमुख उदाहरण जोसेफ पुथेनकालम द्वारा लिखित मोनोग्राफ *मैरिज एंड फैमिली इन केरल* है, जो लोयोला कॉलेज, तिरुवनंतपुरम के समाजशास्त्र विभाग में थे, जिसे केरल में नातेदारी पर एक मौलिक कार्य माना जाता है।

1950 के दशक की शुरुआत में दक्षिण के समाजशास्त्र विभागों में भारतीय समाज पर अग्रणी कार्य किए गए। श्यामाचरण दुबे, जिन्होंने भारत में ग्राम मोनोग्राफ का चलन शुरू किया, 1952 में ओस्मानिया विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग में रीडर के पद पर आये। दुबे की मौलिक कृति, *इंडियन विलेज* जो 1955 में प्रकाशित हुई और सिकंदराबाद शहर के करीब स्थित शमीरपेट पर आधारित है, जिसे दक्षिण एशिया के किसी एक गांव पर लिखी गई पहली कृति माना जाता है। 1954 में, शिकागो विश्वविद्यालय के अमेरिकी मानवविज्ञानी मिल्टन सिंगर को तत्कालीन मद्रास राज्य में बदलते ग्रामीण समाज का अध्ययन करने के लिए सरकार द्वारा आमंत्रित किया गया था। औद्योगिक शहर मद्रास में परंपरा की भूमिका और आधुनिक शहरी केंद्रों में संस्कृत परंपरा पर उनके शोध के कारण 1955 में क्लासिक पुस्तक 'व्हेन ए ग्रेट ट्रेडिशन मॉडर्नाइजेस: एन एंथ्रोपोलॉजिकल अप्रोच टू इंडियन ट्रेडिशन' का प्रकाशन हुआ। एमएन श्रीनिवास की पुस्तकें – *मैरिज एंड फैमिली इन मैसूर और रिलीजन एंड सोसाइटी अमंग द कूर्ग्स ऑफ साउथ इंडिया* – क्रमशः 1942 और 1952 में प्रकाशित हुईं, जब वे बॉम्बे विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में थे।

1970 और 1980 के दशकों में कर्नाटक के समाजशास्त्र विभाग भी राष्ट्रीय और राज्य संगठनों द्वारा प्रायोजित सामाजिक समस्याओं पर केंद्रित शोध परियोजनाओं का घर थे। ये परियोजनाएँ मुख्य रूप से स्थिति का विश्लेषण करने और समाधान सुझाने पर केंद्रित थीं। ग्रामीण गरीबों और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों दोनों के लिए आवास पर सी. पार्वथम्मा के अध्ययन, इस बात के कुछ उदाहरण हैं कि समाजशास्त्र विभागों में सामाजिक कार्रवाई के लिए शोध के विचार को किस प्रकार प्रोत्साहित किया गया।

1950–2000 की अवधि में पूरे दक्षिण भारत में समाजशास्त्र में विश्वविद्यालयों और शिक्षण कार्यक्रमों की संख्या में अधिकतम वृद्धि देखी गई। लेकिन 2000 के बाद से, जब उच्च शिक्षा का नियंत्रण राज्य से निजी क्षेत्र में स्थानांतरित हो गया, तो समाजशास्त्र को झटका लगा।

> 2000–2024

इक्कीसवीं सदी में दक्षिणी राज्यों में कई नए विश्वविद्यालय स्थापित किए गए, लेकिन उनमें से अधिकांश निजी क्षेत्र में हैं। यहां तक कि नव स्थापित राज्य विश्वविद्यालयों में भी समाजशास्त्र की पढ़ाई में गिरावट देखी गई है। कर्नाटक इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस अवधि में सरकार द्वारा 37 विश्वविद्यालय स्थापित किए गए और इनमें से केवल नौ विश्वविद्यालयों में ही समाजशास्त्र विभाग संचालित हैं। 2000 से 2023 के बीच निजी क्षेत्र में 39 विश्वविद्यालय स्थापित किए गएय और फिर भी, इनमें से केवल दो विश्वविद्यालयों में वर्तमान में समाजशास्त्र की पढ़ाई कराई जा रही है। इस अवधि में आंध्र प्रदेश में खोले गए 49 संस्थानों, और तेलंगाना (जो 2014 में आंध्र प्रदेश से अलग हुआ) में खोले गए 28 संस्थानों में से केवल तीन विश्वविद्यालयों में ही समाजशास्त्र की पढ़ाई कराई जा रही है। तमिलनाडु में निजी क्षेत्र में खोले गए 29 विश्वविद्यालयों में से किसी में भी समाजशास्त्र की पढ़ाई नहीं कराई जा रही है। केरल में भी 2000 के बाद खोले गए किसी भी निजी विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र की पढ़ाई नहीं कराई जाती है। लेकिन अच्छी बात यह है कि स्नातक महाविद्यालय समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम उपलब्ध कराते हैं।

> समापन टिप्पणी

दक्षिण भारत में समाजशास्त्र की प्रगति ने कई प्रश्न उठाए हैं जिन पर गंभीर चर्चा की आवश्यकता है पहला प्रश्न दक्षिण के विभिन्न क्षेत्रों में इस विषय के इतिहास को दर्ज करने में अंतराल से संबंधित है। विकास पैटर्न या समाजशास्त्र की पतन यात्रा के कारणों का कोई व्यवस्थित रिकॉर्ड नहीं है। जहाँ तक विभिन्न विश्वविद्यालय विभागों द्वारा कवर किए गए प्रमुख शोध क्षेत्रों की पहचान करने और इन शोध अध्ययनों के परिणामों और आउटपुट पर एक महत्वपूर्ण बहस में शामिल होने का सवाल है, मुझे लगता है कि एक और बड़ा अंतर है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कई विभागों में महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं, लेकिन इन कार्यों, उनकी वर्तमान प्रासंगिकता और इन अध्ययनों का उपयोग करके अनुदैर्ध्य अध्ययन करने के प्रयासों के बारे में दस्तावेजीकरण लगभग अनुपस्थित है। पीएचडी शोध के नौकरी मूल्य को अलग न रखते हुए, अधिकांश शोध पूरी तरह से डिग्री–केंद्रित हैं, बिना किसी गंभीर समीक्षा के। साथ ही, शैक्षणिक प्रथाओं और गुणवत्ता मूल्यांकन पर एक बहुत ही गंभीर संवाद की आवश्यकता है।■

सभी पत्राचार सीधे इंदिरा रामाराव को <ramaraoindira@gmail.com> पर प्रेषित करें।

> भारतीय समाजशास्त्र में महिलाएँ: नारीवादी योगदान, शिक्षणशास्त्र और व्यवहार

अरविंदर अंसारी, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, भारत द्वारा

भारतीय समाजशास्त्र का विकास उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और आधुनिकता की बौद्धिक विरासतों से गहराई से प्रभावित रहा है। इन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं ने ज्ञान के निर्माण के कुछ तरीकों का समर्थन किया, जो अक्सर पितृसत्तात्मक, ब्राह्मणवादी और यूरोसेंट्रिक विचारों से जुड़े थे। इसके अतिरिक्त, इन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं ने अक्सर ज्ञान के वैकल्पिक तरीकों और हाशिए पर पड़े सबाल्टर्न दृष्टिकोणों को बाहर रखा। इन प्रमुख संरचनाओं के भीतर, महिलाओं को मुख्य रूप से समाजशास्त्रीय अध्ययन के विषयों के रूप में रखा गया था, न कि अपने आप में ज्ञान उत्पादक या सिद्धांतकार के रूप में। उनकी भूमिकाएं प्रायः परिवार, नातेदारी, प्रजनन और सामाजिक भूमिकाओं के विश्लेषण तक ही सीमित रहती थीं, जिससे उनकी वास्तविक वास्तविकताएं व्यापक समाजशास्त्रीय आख्यानों के आंकड़ों तक सीमित रह जाती थीं। जबकि महिलाओं के अनुभवों को अकादमिक जांच के विषयों के रूप में दृश्यमान बनाया गया, महिला समाजशास्त्रियों के बौद्धिक योगदान स्वयं इस विषय के प्रामाणिक इतिहास के भीतर काफी हद तक अदृश्य रहेः विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में उन्हें दरकिनार कर दिया गया और मान्यता और अधिकार के संस्थागत स्थानों में उन्हें कम प्रतिनिधित्व दिया गया। यह तर्क दिया जाता है कि यह हाशियाकरण आकस्मिक नहीं है, बल्कि गहरे संरचनात्मक और ज्ञानात्मक बहिष्करण को दर्शाता है जो भारतीय समाजशास्त्र की विशेषता बनी हुई है। इन समस्याओं को समझने के लिए, हमें संबंधित क्षेत्रों के इतिहास की पुनः जांच करने की आवश्यकता है, तथा नारीवादियों के रूप में यह सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई करनी होगी कि महिलाओं के बौद्धिक कार्य को उन क्षेत्रों के विकास के लिए आवश्यक माना जाए।

यह निबंध भारतीय समाजशास्त्र में नारीवादी योगदान की समीक्षा प्रदान करता है, जिसमें इस विषय पर महिला समाजशास्त्रियों के परिवर्तनकारी प्रभाव पर जोर दिया गया है। यह शिक्षण पद्धति, कार्यप्रणाली और संस्थागत नेतृत्व में महत्वपूर्ण हस्तक्षेपों की जांच करता है, जिसमें महिलाओं द्वारा प्रमुख प्रतिमानों और लिंगवादी परंपराओं के लिए पेश की गई चुनौतियों पर जोर दिया गया है। मैं नीरा देसाई, वीना मजूमदार, मैत्रेयी कृष्णराज, सुजाता पटेल, मैत्रेयी चौधरी और शर्मिला रेगे जैसे विचारकों के अग्रणी विचारों पर चर्चा करती हूँ, जिन्होंने मर्दवादी ज्ञानमीमांसा और संस्थागत पदानुक्रमों का विखंडन किया है। ये विद्वान समाजशास्त्र की नारीवादी पुनर्कल्पना की वकालत करती हैं, जिसमें आवश्यक पद्धतियों के रूप में रिफ्लेक्सिविटी, ज्ञानमीमांसा बहुलवाद और अंतःक्रियाशीलता को शामिल किया जाता है। इस प्रकार, मैं तर्क देती हूँ कि महिलाओं का योगदान न केवल पूरक है बल्कि विषय के विकास के लिए आधारभूत है।

> पुरुष–केंद्रित ज्ञान–मीमांसा की अग्रणी आलोचना ने महिलाओं के व्यवस्थित हाशियेकरण को उजागर किया

भारतीय समाजशास्त्र में नारीवादी जुड़ाव के उद्भव ने इस विषय के प्रारंभिक ज्ञानमीमांसा फोकस के खिलाफ एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप को चिह्नित किया। अपने प्रारंभिक वर्षों में, भारतीय समाजशास्त्र गाँव के अध्ययन, जाति पदानुक्रम, नातेदारी पैटर्न और सामाजिक संरचनाओं से जुड़ा रहा – ऐसे क्षेत्र जो अक्सर महिलाओं के अनुभवों को अनदेखा करते थे और अपने वैचारिक ढांचे से लिंग विश्लेषण को बाहर करते थे। नारीवादी विद्वानों के लिए, लिंग को समाजशास्त्रीय विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाकर इन चूकों को चुनौती दी गई। इसने क्षेत्र के मुख्य विषयों और शोध के तरीके दोनों को बदल दिया।

शुरुआती अग्रदूतों के बीच, इरावी करवे के रिश्तेदारी और पारिवारिक जीवन पर ग्राउंडब्रेकिंग अध्ययन कठोर सामाजिक सिद्धांत के साथ नृवंशविज्ञान संवेदनशीलता को एकीकृत करते हैं, जो भारतीय सामाजिक संरचनाओं की अधिक बारीक और समावेशी समझ प्रदान करते हैं। इन नींवों पर निर्माण, विद्वानों ने 1970 और 1980 के दशक में महिलाओं के अध्ययन के संस्थागतकरण की अगुवाई की। उनके प्रयासों को भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति द्वारा 1974 में जारी की गई 'टूवार्डस इक्वलिटी' रिपोर्ट से गहराई से प्रभावित किया गया था, उनके प्रयास 1974 में भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति द्वारा जारी "समानता की ओर" रिपोर्ट से गहराई से प्रभावित थे, और व्यापक महिला आंदोलन से प्रेरित थे, जिसने नारीवादी विद्वत्ता के लिए स्वायत्त स्थान तैयार किए, जिसने पुरुष–केंद्रित ज्ञानमीमांसा की आलोचना की और समाजषास्त्रीय अनुसंधान और षिक्षा जगत में महिलाओं के व्यवस्थित हाशिए पर होने को उजागर किया।

> शिक्षण और अनुसंधान में नारीवादी दृष्टिकोण को एकीकृत करना

भारत में नारीवादी विद्वानों ने प्रमुख ज्ञानमीमांसा को चुनौती देकर और जीवित अनुभवों, सजगता और अंतर्संबंध पर आधारित परिवर्तनकारी शिक्षाशास्त्र को आगे बढ़ाकर समाजशास्त्रीय जांच को नया रूप दिया है। एसएनडीटी महिला विश्वविद्यालय में महिला अध्ययन अनुसंधान केंद्र में मैत्रेयी कृष्णराज के नेतृत्व ने शिक्षण और शोध में नारीवादी दृष्टिकोणों के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके सहभागी शिक्षण दृष्टिकोण ने छात्रों और समुदायों

>>

के बीच सहयोग पर जोर दिया, जिससे ज्ञान के सह–उत्पादन को बढ़ावा मिला। वीना मजूमदार ने महिला विकास अध्ययन केंद्र की संस्थापक निदेशक के रूप में अपनी भूमिका के माध्यम से सक्रियता और शिक्षा जगत के बीच सेतु का काम किया, समुदाय आधारित शिक्षा और शोध पहलों का नेतृत्व किया जिसने हाशिए पर पड़ी महिलाओं को सशक्त बनाया और नारीवादी विद्वत्ता में उनके अनुभवों को सामने लाया। नीरा देसाई ने 1974 में एसएनडीटी महिला विश्वविद्यालय में भारत का पहला स्वायत्त महिला अध्ययन केंद्र स्थापित करके नारीवादी शिक्षाशास्त्र को और संस्थागत बनाया, जिससे नारीवादी विद्वत्ता और सक्रियता के बीच एक जैविक संबंध बना रहा।

शर्मिला रेगे ने आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र को आगे बढ़ाया जो जाति, वर्ग और लिंग के अंतरसंबंधों को सामने लाया। पुणे विश्वविद्यालय में क्रांति ज्योति सावित्रीबाई फुले महिला अध्ययन केंद्र की निदेशक के रूप में, रेगे ने दलित महिलाओं की कहानियों और साक्ष्यों का उपयोग करके नारीवादी सिद्धांत और शिक्षाशास्त्र में एक क्रांतिकारी हस्तक्षेप को चिह्नित किया, पद्धतिगत क्षितिज का विस्तार किया और मुख्यधारा के समाजशास्त्र और उच्च–जाति के नारीवादी प्रवचनों दोनों की बहिष्कार प्रथाओं को चुनौती दी।

सुजाता पटेल और मैत्रेयी चौधरी ने नारीवादी शिक्षाशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, विशेष रूप से पद्धतिगत और नैतिक अनिवार्यता के रूप में रिफ्लेक्सिविटी पर उनके जोर के माध्यम से। अपनी प्रभावशाली कृति *द प्रैक्टिस ऑफ सोशियोलॉजी* में चौधरी ऐसे कक्षा स्थानों की वकालत करती हैं जो आत्म–चिंतन को बढ़ावा दें और जड़ ज्ञान–मीमांसा पदानुक्रमों को चुनौती दें। उनका दृष्टिकोण पद्धतिगत बहुलवाद पर जोर देता है और छात्रों को ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोतों के रूप में अपने जीवंत अनुभवों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करता है। पटेल के हस्तक्षेप भी इसी तरह रिफ्लेक्सिविटी, अंतःविषयता और परिवर्तनकारी शिक्षा पर जोर देते हैं। भारतीय समाजशास्त्र में औपनिवेशिक और राष्ट्रवादी विरासतों की उनकी आलोचनाएं यूरोकेन्द्रित ढांचे के प्रभुत्व को उजागर करती हैं और एक ऐसे समाजशास्त्र का आह्वान करती हैं जो हाशिए पर पड़े समूहों के दृष्टिकोण पर केन्द्रित हो। पटेल की नारीवादी शिक्षाशास्त्र अधिक समावेशी और सामाजिक रूप से संलग्न ज्ञान उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए ज्ञान संबंधी पदानुक्रम को खत्म करने को बढ़ावा देता है।

> ज्ञान को स्थापित करना और अन्तर्सम्बन्धों को उजागर करना

डोना हरावे की स्थित ज्ञान की अवधारणा विज्ञान में वस्तुनिष्ठता के झूठे दावों की आलोचना करती है और जीवित अनुभवों और विशिष्ट सामाजिक स्थानों पर आधारित ज्ञानमीमांसा की मांग करती है। भारत में, शर्मिला रेगे ने दलित महिलाओं की गवाही के साथ अपने काम के माध्यम से इस ढांचे को क्रियान्वित किया, दलित नारीवादी दृष्टिकोण की ज्ञानमीमांसा को आगे बढ़ाया और इस बात पर जोर देकर मुख्यधारा के समाजशास्त्र और उच्च जाति के नारीवादी प्रवचनों को चुनौती दी कि जाति, वर्ग और लिंग को उत्पीड़न की सह–संरचनात्मक संरचनाओं के रूप में माना जाना चाहिए।

प्रतिच्छेदन, जिसकी संकल्पना सर्वप्रथम किम्बर्ले क्रेनशॉ द्वारा की गई थी, भारतीय नारीवादी समाजशास्त्र के भीतर एक महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक और पद्धतिगत ढांचा बन गया है। सुजाता पटेल और मैरी ई. जॉन ने भारतीय संदर्भ में जाति, वर्ग, लिंग, धर्म और क्षेत्र के विशिष्ट अंतर्संबंधों को संबोधित करने के लिए इसके अनुप्रयोग का विस्तार किया है। पटेल भारतीय समाजशास्त्र की औपनिवेशिक और

> **"महिलाओं का योगदान विषय के विकास के लिए आधारभूत है"**

ब्राह्मणवादी नींव की आलोचना करती हैं, तथा उन बहिष्कारवादी प्रथाओं को उजागर करती हैं जिन्हें अंतर्संबंधी दृष्टिकोण खत्म करना चाहते हैं। इसी तरह, मैरी ई. जॉन पितृसत्ता, जाति व्यवस्था, सांप्रदायिकता और नवउदारवादी वैश्वीकरण सभी एक साथ कैसे काम करते हैं, यह देखने के लिए अंतर्संबंधी विश्लेषण का उपयोग करती हैं। वे एक ऐसी नारीवादी राजनीति की मांग करती हैं जो इन जटिल सत्ता संरचनाओं से अवगत हो।

> नारीवादी सिद्धांत को सामाजिक दुनिया में स्थापित करना

गेल ओमवेट और कमला भसीन ने नारीवादी व्यवहार को अकादमिक जगत से आगे बढ़ाया है, तथा नारीवादी पद्धतियों को जमीनी स्तर के आंदोलनों और सामुदायिक शिक्षण स्थलों तक पहुंचाया है। ओमवेट ने नारीवादी सिद्धांत को दलित और ग्रामीण महिला आंदोलनों के साथ एकीकृत करके विद्वान और कार्यकर्ता के बीच की रेखा को धुंधला कर दिया, तथा सहभागी शिक्षा और सामूहिक सशक्तीकरण पर जोर दिया। सहभागी कार्रवाई अनुसंधान पर उनके कार्य ने हाशिए पर पड़े समुदायों को सह–शोधकर्ता के रूप में स्थापित किया, जिससे ज्ञान उत्पादन में पारंपरिक पदानुक्रम में बाधा उत्पन्न हुई। कमला भसीन ने श्संगतश के साथ अपनी नारीवादी शैक्षिक पहलों और *'पितृसत्ता क्या है?'* और *'जेंडर को समझना'* जैसी अपनी सुलभ रचनाओं के माध्यम से नारीवादी ज्ञान को लोकतांत्रिक बनाया। कहानी कहने, गाने और संवाद के माध्यम से, भसीन ने ग्रामीण और कामकाजी वर्ग की महिलाओं के बीच सामूहिक शिक्षा और चेतना बढ़ाने को बढ़ावा दिया, जिससे नारीवादी सिद्धांत जमीनी स्तर पर सुलभ हो गया।

सामूहिक रूप से, ये नारीवादी पद्धतियाँ सहभागी, समावेशी और नैतिक रूप से संलग्न शोध प्रथाओं को प्राथमिकता देती हैं। वे आत्मचिंतनशीलता, अवस्थित ज्ञान और अंतःक्रियाशीलता को बढ़ावा देकर प्रत्यक्षवादी और पृथक जांच पद्धतियों को चुनौती देती हैं। आत्मचिंतनशीलता, जैसा कि गीता चड्ढा और मैत्रेयी चौधरी ने जोर दिया है, शोधकर्ताओं से उनकी स्थिति और ज्ञान उत्पादन में निहित शक्ति संबंधों की आलोचनात्मक जांच करने का आह्वान करती है। पियरे बौर्डियू की आत्मचिंतनशील समाजशास्त्र की अवधारणा से प्रेरणा लेते हुए, नारीवादी विद्वान गहन आत्मचिंतन की वकालत करती हैं, शोधकर्ता को उस सामाजिक दुनिया के भीतर रखते हैं जिसका वे अध्ययन करते हैं और वस्तुनिष्ठ तटस्थता के दावों को ध्वस्त करते हैं। ये दृष्टिकोण ज्ञान उत्पादन को उपनिवेशवाद से मुक्त करने और ऐसे व्यवहार को बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं जो छात्रवृत्ति को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ता है।

> महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और भेदभाव जारी

तथापि, इन आधारभूत योगदानों के बावजूद, भारतीय शिक्षा जगत पुरुषवादी संस्थागत संस्कृतियों से जूझ रहा है, जो अक्सर महिलाओं के विद्वत्तापूर्ण काम को अदृश्य या परिधीय बना देती

>>

हैं। चौधरी का तर्क है कि लैंगिक पदानुक्रम कायम है, जो नेतृत्व के पदों से आगे बढ़कर ज्ञान उत्पादन और प्रसार तक फैला हुआ है। महिलाओं द्वारा किए गए शोध को – विशेष रूप से नारीवादी सिद्धांत, जाति और हाशिए पर होने के मामले में – अक्सर कम आंका जाता है या उसे 'महिला अध्ययन' के दायरे में सीमित कर दिया जाता है, बजाय इसके कि उसे मुख्यधारा के समाजशास्त्रीय विमर्श में शामिल किया जाए। मैत्रेयी चौधरी इस ज्ञानात्मक बहिष्कार की आलोचना करते हुए तर्क देती हैं कि नारीवादी अंतर्दृष्टि को अक्सर विषय के विश्लेषणात्मक ढांचे के केंद्रीय के बजाय पूरक के रूप में माना जाता है।

भारत में नारीवादी समाजशास्त्र आज नवउदारवादी वैश्वीकरण, तकनीकी परिवर्तन और बढ़ते सामाजिक–राजनीतिक तनावों द्वारा आकार लेने वाली जटिल चुनौतियों का सामना कर रहा है। गिग अर्थव्यवस्था और प्लेटफॉर्म–आधारित श्रम के विस्तार ने अनिश्चित कार्यों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ा दिया है, जिससे असुरक्षित आजीविका, वेतन असमानताओं और सामाजिक सुरक्षा से बहिष्कार का सामना कर रही दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक महिलाएं असमान रूप से प्रभावित हो रही हैं। डिजिटल विभाजन के कारण और भी जटिल होने वाले ये घटनाक्रम, जाति, वर्ग और लिंग के मौजूदा पदानुक्रम को मजबूत कर रहे हैं, तथा आर्थिक अवसरों तक समान पहुंच को सीमित कर रहे हैं। साथ ही, शहरी नियोजन और अवसंरचनात्मक विकास अक्सर प्रमुख समूहों को विशेषाधिकार देते हैं, जिससे हाशिए पर रहने वाली महिलाओं की सुरक्षित और समावेशी सार्वजनिक स्थानों तक पहुँच सीमित हो जाती है।

पर्यावरण क्षरण और जलवायु–प्रेरित विस्थापन – जिन मुद्दों पर बीना अग्रवाल और वंदना शिवा जैसे विद्वानों ने जोर दिया है – वे कमजोरियों को और बढ़ाते हैं, खासकर ग्रामीण और स्वदेशी महिलाओं के लिए, जिनका श्रम सामुदायिक अस्तित्व और पारिस्थितिक स्थिरता का आधार है। इसके अलावा, धार्मिक कट्टरवाद, सांप्रदायिक संघर्ष और राजनीतिक ध्रुवीकरण के बढ़ने से धार्मिक अल्पसंख्यकों की महिलाओं के खिलाफ हिंसा और भेदभाव बढ़ गया है, जिससे उनके अधिकार और सुरक्षा कमजोर हुई है। इन परस्पर संबद्ध चुनौतियों के लिए एक ऐसे नारीवादी व्यवहार की आवश्यकता है जो आत्मचिंतनशील, अंतर्विषयक तथा सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध हो, तथा विकासशील विश्व व्यवस्था में असमानता की स्थानीय और वैश्विक संरचनाओं को संबोधित करे।

> बहुलवाद को अपनाना और सामाजिक रूप से संलग्न विद्वत्ता को बढ़ावा देना ताकि वास्तव में समावेशी और आत्मचिंतनशील विषय की ओर बढ़ा जा सके

नारीवादी विद्वानों ने भारतीय समाजशास्त्र को नया रूप देने, इसके पुरुषवादी आधार को चुनौती देने और इसके पद्धतिगत दृष्टिकोण और विषयगत चिंताओं को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। असमानता के लगातार और विकसित होते रूपों का सामना करने के बावजूद, उनके निरंतर योगदान और परिवर्तनकारी हस्तक्षेपों ने प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों, विशेष रूप से भारतीय समाजशास्त्रीय सोसायटी (ISS) के भीतर महिलाओं के लिए अधिक समावेश और नेतृत्व सुनिश्चित किया है।

भारतीय समाजशास्त्र में हाल ही में हुए घटनाक्रम सार्थक संस्थागत प्रगति और समावेशिता के प्रति नई प्रतिबद्धता का संकेत देते हैं। 2016 में एक ऐतिहासिक क्षण आया, जब सुजाता पटेल को ISS की पहली महिला अध्यक्ष के रूप में चुना गया – एक ऐसी घटना जिसने अकादमिक नेतृत्व में लैंगिक असमानताओं के निवारण में एक महत्वपूर्ण कदम को चिह्नित किया। उनके कार्यकाल ने बाद की महिला नेताओं के लिए रास्ते खोले, जिनमें प्रो. इंदिरा, प्रो. आभा चौहान और प्रो. मैत्रेयी चौधरी शामिल हैं, जिनकी अध्यक्षता ने इन लाभों को मजबूत किया है। सामूहिक रूप से, उनके नेतृत्व ने आईएसएस के लोकतंत्रीकरण को आगे बढ़ाया है, संरचनात्मक असमानताओं को दूर करने और समावेशी विद्वता को बढ़ावा देने पर अपना ध्यान केंद्रित किया है

शिक्षणशास्त्र, अनुसंधान और संस्थागत अभ्यास में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के माध्यम से, नारीवादी विद्वानों ने सामाजिक न्याय को केन्द्र में रखते हुए रिफ्लेक्सिविटी, इंटरसेक्शनैलिटी और भागीदारी पद्धतियों को सामने रखा है। महिला नेताओं के योगदान, विशेष रूप से आईएसएस के भीतर, ने इन परिवर्तनकारी प्रयासों को और मजबूत किया है। फिर भी, भारतीय समाजशास्त्र को लोकतांत्रिक बनाने का कार्य एक सतत परियोजना बनी हुई है। वास्तव में समावेशी और रिफ्लेक्सिव अनुशासन का निर्माण करने के लिए सभी लिंगों के विद्वानों की सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता होती है।

इसका उद्देश्य पुरुषों को बहिष्कृत करने वाले नारीवादी स्थान बनाना नहीं है, बल्कि ऐसे सहयोगी मंचों को बढ़ावा देना है जहाँ विविध आवाजें भारतीय समाज की अधिक व्यापक और न्यायसंगत समझ विकसित करने के लिए मिलकर काम करें। पुरुष विद्वानों को नारीवादी दृष्टिकोणों के साथ गहराई से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करने से जड़ जमाए पदानुक्रम को खत्म करने और विषय को समृद्ध करने में मदद मिल सकती है। बहुलवाद को अपनाने और सामाजिक रूप से जुड़े विद्वानों को बढ़ावा देने से, भारतीय समाजशास्त्र एक ऐसे भविष्य की ओर बढ़ सकता है जिसमें नारीवादी विचार और व्यवहार इसके बौद्धिक और संस्थागत विकास के लिए केंद्रीय हों। ■

सभी पत्राचार अरविंदर अंसारी को <arvinder2009@gmail.com> पर प्रेषित करें।

> भारत में सामाजिक आंदोलन अध्ययन
पर पुनर्विचार

श्रुति तांबे, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, भारत द्वारा

सामाजिक आंदोलनों का समाजशास्त्र पश्चिमी शैक्षणिक जगत में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में एक क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ। 1960 के दशक में, समाजशास्त्र का यह उपक्षेत्र भारत सहित दुनिया भर में बहुत लोकप्रिय था। वास्तव में, सामाजिक आंदोलनों का समाजशास्त्र दुनिया भर में उपनिवेशवाद के उन्मूलन के समय उभरा। क्या यह संयोग है कि उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलनों का उदय और उनकी सफलता तथा सामाजिक आंदोलनों के समाजशास्त्र की लोकप्रियता में वृद्धि एक साथ हुई?

मेरा तर्क है कि अनेक विभिन्न प्रकार के विरोध प्रदर्शनों और उपनिवेशवाद–विरोधी, साम्राज्यवाद–विरोधी तथा नस्ल–विरोधी आंदोलनों ने समाजशास्त्र के एक अलग क्षेत्र के उदय को प्रेरित कियाय सटीक रूप से, सामाजिक आंदोलनों का समाजशास्त्र, जो सामाजिक परिवर्तन के पारंपरिक सूत्रीकरण से आगे बढ़ गया। फिर भी इस क्षेत्र ने उन तरीकों, रणनीतियों और विचारधाराओं को स्वीकार नहीं किया और उन्हें शामिल नहीं किया जो विउपनिवेशवाद के दौर में जमीनी स्तर पर देखी गईं। यह लगभग ऐसा था जैसे सामाजिक आंदोलनों के समाजशास्त्र का विशेष क्षेत्र 'औपनिवेशिक दुनिया' के विकास से पूरी तरह अलग था।

> पश्चिमी उदार पूंजीवादी लोकतंत्रों के भीतर आधुनिक सर्वहारा आंदोलन

मैं तीन ऐसे सिद्धांत प्रस्तुत करना चाहती हूँ जो सामाजिक आंदोलनों के समाजशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण थे क्योंकि यह शोध का एक अलग क्षेत्र बन गया था। ये कुछ अनुभवों तक अकादमिक पहुंच और वैधता की सीमाओं को भी चिह्नित करते हैं।

पहला तर्क यह है कि सामाजिक आंदोलन एक आधुनिक घटना है। आधुनिकता के सभी तत्व – विचारों और मूल्यों, राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज और प्रौद्योगिकी का रूपांतरण – ने सामाजिक आंदोलनों को पूरी तरह से आधुनिक घटना बनाने में योगदान दिया है। हालाँकि परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू में बहुत धीमी और क्षेत्रीय रूप से विशिष्ट थी, पंद्रहवीं शताब्दी के बाद से यूरोप के विभिन्न हिस्सों में कुछ बौद्धिक प्रक्रियाएँ आम तौर पर देखी गई हैं। आधुनिक दुनिया में व्यक्तिवाद, तर्कसंगतता और नए सौंदर्यशास्त्र और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के महत्व को प्रोत्साहित करना आम बात थी। इन परिवर्तनों ने बदले में राजनीति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संबंधों में बदलाव शुरू किए। क्या औपनिवेशिक दुनिया के साथ भी ऐसा ही था? क्या उस समय ग्लोबल साउथ में नस्ल एक महत्वपूर्ण मुद्दा था?

दूसरे, इस क्षेत्र का तात्पर्य है कि संस्थागत सामूहिक कार्रवाई का अध्ययन पश्चिमी पूंजीवाद द्वारा आकार दिए गए उदार लोकतंत्रों में आधुनिकता, व्यक्तिवाद और असहमति के सभी पहलुओं में निहित है। यह पश्चिमी अनुभव को विशेष रूप से प्रामाणिकता प्रदान करता है। ये संस्थागत क्रियाएँ पश्चिमी उदार पूंजीवादी लोकतंत्र में बीसवीं सदी की लोकतांत्रिक संस्थागत संरचनाओं से जुड़ी हैं।

> "ग्लोबल साउथ भी एक समरूप श्रेणी नहीं है"

तीसरा सिद्धांत इस बात पर विस्तार से प्रकाश डालता है कि कौन इन संघर्षों के नेता हैं और कौन अनुयायी हैं। इस क्षेत्र में स्पष्ट धारणा यह है कि सर्वहारा वर्ग सामाजिक आंदोलनों के अग्रदूत है। ये संघर्ष वर्ग संघर्षों और लोकतांत्रिक समाजों में सामाजिक–राजनीतिक और आर्थिक सुधारों के लिए परिणामी दबावों को रेखांकित करते हैं।

इन मान्यताओं और अनेक वैचारिक ढाँचों तथा सैद्धांतिक दृष्टिकोणों के साथ, दुनिया भर के विद्वानों द्वारा सामाजिक आंदोलनों का अध्ययन किया गया। उन्होंने संरचनात्मक तनाव, भेदभाव, आजीविका की हानि और लोकतांत्रिक असहमति के मुद्दों पर प्रकाश डाला। इसी मार्ग का अनुसरण करते हुए, भारत और वैश्विक दक्षिण में आंदोलनों द्वारा अपनाई गई विभिन्न रणनीतियों का दस्तावेजीकरण किया गया।

> छह दशकों की भारत में लोकप्रियता के बावजूद मुख्यधारा में कोई स्थान नहीं

भारत में 1980 के दशक में सामाजिक आंदोलनों, राष्ट्रवादी आंदोलनों, किसान आंदोलनों और आदिवासी आंदोलनों पर शोध में उछाल देखा गया। इसके अलावा, भूदान–ग्रामदान (भूमि दान और ग्राम दान) आंदोलन जैसे वैयक्तिक अध्ययनों ने सामाजिक आंदोलनों के समाजशास्त्र के स्थापित ढांचे के भीतर विभिन्न संघर्षों, आंदोलनों और आंदोलनों का दस्तावेजीकरण और विश्लेषण किया। इसी अवधि में कई विश्वविद्यालयों में कई डॉक्टरेट शोध प्रबंध भी प्रस्तुत किए गए।

और फिर भी, अंतरराष्ट्रीय समाजशास्त्रीय स्तर पर एक अकादमिक क्षेत्र के रूप में सामाजिक आंदोलनों के समाजशास्त्र की लोकप्रियता के छह दशकों के बाद, दक्षिण एशिया और विशेष रूप से भारत

>>

में लाखों आम संसाधनहीन लोगों से जुड़े असंतोष, विरोध और विवादों के मामले और अनुभव सामाजिक आंदोलनों पर मुख्यधारा के समाजशास्त्रीय विमर्श के ढांचे में फिट होने के लिए कैसे और क्यों संघर्ष कर रहे हैं? क्या हम आज भी जारी इस पहेली को समझ सकते हैं और उन कारकों की पहचान कर सकते हैं जो हमें इससे बाहर निकलने का रास्ता दिखा सकते हैं?

> भारत भर में आंदोलन और सामाजिक आंदोलनों की लहरें समाजशास्त्रीय बहसों पर ध्यान केंद्रित करने में विफल रहीं

NAPM@30 एक ऐसा दस्तावेज है जो संघर्षों (सफल और असफल दोनों) का जश्न मनाता है और बताता है कि जब 1990 के दशक की शुरुआत में यह जन गठबंधन उभर रहा था, तो विश्व बैंक द्वारा संचालित संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम पहले से ही भारत सरकार पर थोपा जा चुका था। इस घुसपैठ ने हजारों लोगों के लिए अनुदान, कल्याणकारी योजनाओं, सब्सिडी और स्थिर स्थायी रोजगार को बुरी तरह प्रभावित किया। फिर भी, जैसा कि NAPM@30 हमें याद दिलाता है, कल्याणकारी राज्य और संवैधानिक मूल्यों पर आधारित संस्थागत ढांचे के वादे पर शासक वर्ग और संसाधनहीन शोषित जनता के बीच एक आम सहमति – हालांकि बहुत स्पष्ट नहीं – 1980 के दशक के अंत तक प्रचलित थी।

1970 और 1980 के दशक में छात्रों और युवाओं के नेतृत्व में पूरे भारत में आंदोलन की लहर देखी गई, जिसमें व्यापक रूप से सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से भारतीय समाज के सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक सुधार की मांग की गई, जिसमें उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवादी आंदोलन के लक्ष्यों और लोकतांत्रिक समाजवाद और कल्याणकारी राज्य की स्थापना के संवैधानिक लक्ष्यों का हवाला दिया गया। भूमिहीनों को भूमि का पुनर्वितरण, अनुसूचित जातियों जैसे सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के लिए आवास, गरीब छात्रों के लिए शैक्षिक सब्सिडी, गरीबी को कम करने के लिए सब्सिडी वाले भोजन और अनाज को सुनिश्चित करने वाली सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी उनकी कुछ मांगें थीं। अस्सी के दशक के मध्य तक भी, उपनिवेशवाद के बाद के चार दशकों के बाद भी यह माना जाता था कि भारत के लोकतांत्रिक गणराज्य को अरबों लोगों के लिए एक समान भविष्य को सुरक्षित करने के लिए (सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक) न्याय, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद द्वारा समर्थित स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मार्ग पर आगे बढ़ना था। इन उद्देश्यों के साथ, भारत के विभिन्न हिस्सों में हजारों आंदोलन, अभियान और आंदोलन उठे और खत्म हो गए। फिर भी, भारत में, सामाजिक आंदोलन समाजशास्त्रीय हलकों में चर्चा और बहस का एक महत्वपूर्ण मुद्दा थे, लेकिन केंद्रीय मुद्दा नहीं थे। भारत में समाजशास्त्रीय हलकों में सामाजिक स्तरीकरण बहस के वैचारिक और महत्वपूर्ण पहलू के साथ मुख्य बहस अभी भी परंपरा बनाम आधुनिकता की बहस और ग्रामीण बनाम शहरी की बहस थी।

> 'नए' संघर्ष उन्नत पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं और औपनिवेशिक पूंजीवादी भारतीय अर्थव्यवस्था के बीच की खाई को दर्शाते हैं

हालाँकि, 1980 के दशक के उत्तरार्ध में, नवीन सामाजिक आंदोलन (एनएसएम) सिद्धांत उभरा, जिसमें सामाजिक आंदोलनों के मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, "पुराने" आंदोलनों के विपरीत, विकसित पश्चिमी दुनिया में 1960 के दशक से देखे जा रहे "नवीन" आंदोलनों का विश्लेषण किया गया। 'नवीन' सामाजिक आंदोलनों की विशेषता उन्नत पश्चिमी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में जीवन शैली, मूल्यों और निजी जीवन और प्रतीकात्मक क्षेत्र के परिवर्तन पर एक विशिष्ट फोकस थी।

यह वह समय था जब रोजगार के लिए युवाओं द्वारा किए गए आंदोलन, उचित मूल्य और भूमि अधिकारों के लिए किसानों और छोटे किसानों द्वारा किए गए आंदोलन, तथा विस्थापन के खिलाफ और संसाधनों की मांग करने वाले आदिवासी समुदायों द्वारा किए गए आंदोलन सहित कई जन आंदोलन भारतीय लोकतांत्रिक क्षेत्र में हलचल मचा रहे थे। राजनीतिक और आर्थिक पुनर्गठन के मुद्दे उभरे थे और नागरिक समाज के भीतर आय और निर्धनता को शक्ति पुनर्वितरण के माध्यम से कम करने की तत्काल आवश्यकता पर बहस केंद्र में थी। 1980 के दशक में सम्मान की मांग करने वाले आंदोलनों और ट्रेड यूनियनों के माध्यम से उठाए गए अस्तित्व और लोकतांत्रिक अधिकारों के मुद्दे आम एजेंडे थे।

अन्य शब्दों में, जहाँ भारत में भौतिक संघर्ष, नागरिकता और मानव सम्मान से संबंधित आंदोलन साथ–साथ लड़े जा रहे थे, पश्चिमी समाजों में अस्तित्व के मुद्दे पहले से ही कमोबेश सुलझ चुके थे और पहचान, जीवनशैली और मूल्यों के मुद्दों पर संघर्ष हो रहा था। भारत ने औपनिवेशिक पूंजीवाद के मार्ग से पूंजीवाद में प्रवेश किया था, जैसा कि अलवी और शैनिन (1982) दृढ़ता से तर्क देते हैं, और इसने उन्नत पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं और औपनिवेशिक पूंजीवादी भारतीय अर्थव्यवस्था के बीच अंतर को स्पष्ट किया।

> उपेक्षित वैचारिक और सैद्धांतिक रूपरेखा

1990 के दशक से, समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से वंचित और शोषित वर्गों के आंदोलन – जिन्हें राज्य ने स्वतंत्रता के बाद 'अनुसूचित जाति' का नाम दिया था – वन भूमि और वन उपज पर वंशानुगत अधिकारों की मांग करने वाले आदिवासी आंदोलन, साथ ही सांस्कृतिक अधिकार और नागरिक के रूप में सम्मान, और महिला आंदोलन, सभी का अध्ययन एनएसएम सिद्धांत के ढांचे का उपयोग करके किया गया है। एनएसएम के प्राप्त ढांचे को विद्वानों द्वारा बहुत अधिक संशोधन के बिना 'लागू' किया गया था।

नई सहस्राब्दी में, जबकि भौतिक अधिकारों और सामाजिक–सांस्कृतिक मांगों के लिए अधूरे विरोध और संघर्ष जमीन पर उग्र हो रहे हैं, विद्वान सापेक्ष अभाव का उपयोग करते हुए कार्यात्मक व्याख्या से लेकर एनएसएम सिद्धांत तक सभी सामाजिक आंदोलन सिद्धांतों का उपयोग कर रहे हैं।

एक अजीबोगरीब स्थिति देखी गई है और वरिष्ठ विद्वानों द्वारा लगभग एक क्षमाप्रार्थी राय व्यक्त की गई है कि भारतीय विद्वानों द्वारा 1980 के दशक में आंदोलन अध्ययन के लिए इस्तेमाल किए गए वैचारिक और सैद्धांतिक ढांचे को भारतीय शिक्षा जगत में काफी हद तक नजरअंदाज कर दिया गया था। कार्यकर्ता बताते हैं कि नारों और एजेंडों के साथ–साथ जमीनी स्तर पर आंदोलनों में इस्तेमाल की जाने वाली रणनीतियों ने कुछ शिक्षाविदों की जिज्ञासा को छोड़कर अकादमिक जगत में ने बहुत अधिक चर्चा को नहीं छेड़ा है।

> वैश्विक दक्षिण से समापन प्रश्न

असहमति, विरोध और विभिन्न विचारधाराओं और एजेंडों के प्रति विरोध की लोकतांत्रिक अभिव्यक्तियों के कारण हमारी समकालीन दुनिया जीवंत है। ग्लोबल साउथ से देखने पर, कभी–कभी आश्चर्य होता है कि क्या यह वही दुनिया है जिसमें हम सभी रहते हैं। गहन विश्लेषण से पता चलता है कि ग्लोबल साउथ भी एक समरूप श्रेणी नहीं है। प्राकृतिक संसाधनों के न्यायसंगत वितरण पर संघर्ष से लेकर #MeToo जैसे यौन शोषण के खिलाफ स्वतंत्रता के लिए आंदोलन और LGBTQ समुदायों जैसे पहचान–आधारित आंदोलनों से

>>

लेकर पूंजीवादी खनन, औद्योगिक और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं के कारण विस्थापन के खिलाफ विरोध तक, कुछ मुद्दे सामान्य हैं और कुछ ग्लोबल साउथ के लिए विशिष्ट हैं। यह संसाधनों, आय, अधिकारों और दंड से जुड़े विरोधाभासों से भरी एक वैश्विक तस्वीर है।

अतः, निष्कर्ष के तौर पर, मैं निम्नलिखित प्रश्न उठाती हूँ: क्या भारत में सामाजिक आंदोलनों का समाजशास्त्र उस उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष से अपना वैचारिक और सैद्धांतिक आधार प्राप्त करने में विफल रहे, जिसमें अंग्रेजों के साथ हिंसक संघर्ष से लेकर महात्मा गांधी के नेतृत्व में गठित अहिंसक समुदाय—आधारित नेटवर्क तक की रणनीतियों का इस्तेमाल किया गया था? जबकि सामाजिक आंदोलनों के समाजशास्त्र के पश्चिमी सिद्धांतों ने राष्ट्रवाद को एक संकीर्ण वैचारिक रुख करार दिया, क्या गांधीवादी नेतृत्व के तहत राष्ट्रवाद का अर्थ पश्चिम में समान था? तो क्या हम भारत और वैश्विक दक्षिण के अन्य समाजों में संघर्षों और द्वन्द्वों का विश्लेषण करते समय, अचेतन रूप से ग्रहण किए गए प्राच्यवाद के साथ, प्राप्त पश्चिमी वैचारिक और सैद्धांतिक ढाँचों को लागू करने में बहुत अधिक यांत्रिक थे?

सामाजिक आंदोलनों के समाजशास्त्र में बहुत जरूरी नई जान फूंकने के लिए इन प्रश्नों के उत्तर तलाशना जरूरी है। तभी हम एक ऐसे उपक्षेत्र तक पहुंच सकते हैं जो न्यायसंगत हो और सामाजिक आंदोलनों की विविध वास्तविकताओं के लिए अधिक उपयुक्त हो, खासकर वैश्विक दक्षिण में। ■

सभी पत्राचार श्रुति तांबे को <shruti.tambe@gmail.com> पर प्रेषित करें।

> चरम दक्षिणपंथी सामान्यीकरण और कट्टरपंथी मुख्यधारा

सबरीना जाजक, डीजिम इंस्टीट्यूट, जर्मनी, **इमानुएल टोस्कानो**, गुग्लिल्मो मार्कोनी यूनिवर्सिटी, इटली, और **अन्ना–मारिया मेउथ**, डीजिम इंस्टीट्यूट, जर्मनी द्वारा

फोटो सेबस्टियन क्रिस्टोफ गोलनो द्वारा, ए.आई. द्वारा संपादित।

दुनिया भर के कई लोकतंत्रों ने अपने सिद्धांतों और बुनियादी मूल्यों में जबरदस्त बदलाव देखे हैं जो जारी हैं: जिसे हमेशा से चरम दक्षिणपंथी कहा जाता रहा है, वह चरम दक्षिणपंथी नहीं रहा और नया सामान्य, मुख्यधारा बन गया है। जातीय–राष्ट्रवादी, सत्तावादी, प्रवासी–विरोधी, लिंगवादी और बहुलता–विरोधी विचारधाराओं ने समाजों में प्रमुख पदों पर कब्जा कर लिया है। चरम दक्षिणपंथी कर्त्ता आर्थिक और राजनीतिक अभिजात वर्ग में पदों पर काबिज हैं, लेकिन वे जमीनी स्तर के आंदोलनों और इंस्टा–प्रभावकों के माध्यम से भी जुटते हैं। मुख्याधारा में लाने और लामबंदी के कई वर्षों ने चरम दक्षिणपंथी विचारधाराओं को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सत्ता के पदों पर बिठा दिया है और कई आम नागरिकों, पुरुषों, महिलाओं और बच्चों के दिलों और दिमागों में जगह बना ली है। इसने समाज को, जिसे हम 'कट्टरपंथी मुख्यधाराश कहना चाहेंगे, में परिवर्तित कर दिया है।

> कट्टरपंथी मुख्यधारा की अवधारणा

ग्लोबल डायलॉग के इस विशेष संस्करण के साथ, हम यूरोप, अमेरिका और उसके बाहर उदार लोकतंत्रों के साथ–साथ लोकतांत्रिक सहयोगीता की वैश्विक वास्तुकला के लिए चरम दक्षिणपंथ के सामान्यीकरण की हालिया और नई गतिशीलता और इसके निहितार्थों पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं। हम उन सवालों पर गौर करेंगे कि पहले से हाशिए पर पड़े जातीय–राष्ट्रवादी विचार और बयानबाजी मुख्यधारा के विमर्श, सामाजिक–सांस्कृतिक आयामों, व्यक्तिगत दृष्टिकोणों और राजनीतिक लामबंदी और कार्यक्रमों में तेजी से अपनाई और खुले तौर पर व्यक्त की जाने लगी है; और यह कैसे हुआ। हम 'कट्टरपंथी मुख्यधारा' की अवधारणा का उपयोग करने का सुझाव देते हैं ताकि दूर–दराज (केवल) की रणनीति, अभिनेताओं और विचारधाराओं के विश्लेषण से हटकर मुख्यधारा को ही कट्टरपंथी बनाने की समझ की ओर रुख किया जा सके।

कट्टरपंथी मुख्यधारा से हमारा तात्पर्य स्थानीय स्तर पर बढ़ते हुए वैश्विक नेटवर्क (राजनेताओं, व्यापारिक नेताओं, डिजिटल फासीवादियों, राजनीतिक दलों, संगठनों और जमीनी स्तर के आंदोलनों के साथ–साथ निजी व्यक्तियों सहित) द्वारा विचारधाराओं के प्रसार और निर्माण से है, जो असमान मूल्य के आदेशों के माध्यम से समाज और सामाजिक संबंधों का पुनर्गठन करते हैं। इस अवधारणा का उपयोग करते हुए, हम एक परस्पर संबंधित और अभी तक काफी हद तक उपेक्षित प्रक्रिया की ओर अधिक ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे: लोकतांत्रिक और समावेशी मानदंडों और सिद्धांतों का गैर–सामान्यीकरण, और लोकतंत्र समर्थक, भेदभाव विरोधी (जैसे नस्लवाद विरोधी, लिंगवाद विरोधी) और प्रगतिशील ताकतों को हाशिये पर धकेलना।

इस परिचय में हम कट्टरपंथी मुख्यधारा के विचार को विस्तार से समझाना चाहते हैं तथा इसके कुछ अंतर्राष्ट्रीय परिणामों और समानता तथा उदार बहुलवादी लोकतंत्र पर इसके (अपेक्षित) प्रभावों की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं।

> खोज से विश्लेषण तक

2023 में बर्लिन के जर्मन सेंटर ऑफ इंटीग्रेशन एंड माइग्रेशन रिसर्च (DeZIM) में ISA द्वारा सह–आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में, जब हमने पहली बार कट्टरपंथी मुख्यधारा की अवधारणा विकसित की, तो हम एक विरोधाभास पर ध्यान केंद्रित करना चाहते थे। हमारे लिए, कट्टरपंथी मुख्यधारा की अवधारणा एक शैलीगत और विचारोत्तेजक उपकरण, एक विरोधाभास थी, क्योंकि कट्टरपंथी और मुख्यधारा विपरीत हैं या कम से कम ऐसी अवधारणाएँ हैं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता है: जो कट्टरपंथी है वह एक ही समय में मुख्यधारायी नहीं हो सकता है। हमने सम्मेलन को 'कट्टरपंथी मुख्यधारा की खोज में' नाम दिया, ताकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर >>

प्रसिद्ध विद्वानों के साथ जब (मुख्यधारा) समाज कट्टरपंथी हो जाता है तो सामान्यीकरण की गतिशीलता और इसके खतरों पर चर्चा की जा सके।

आज, ढूंढने की बजाय, हमें लगता है कि यह समय तेजी से कट्टरपंथी होते समाज की अनुभवजन्य वास्तविकताओं और कट्टर दक्षिणपंथ के सामान्यीकरण और लोकतांत्रिक, बहुलवादी और प्रगतिशील कर्त्ताओं और मूल्यों के विसामान्यीकरण के बीच की गतिशीलता को देखने का है। इस मुद्दे पर योगदान व्यापक सबूत प्रदान करता है।

टेरी गिवेंस यूरोप में विभिन्न चरणों में विभिन्न पार्टी प्रणालियों के तुलनात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से कट्टर दक्षिणपंथ के सामान्यीकरण की जांच करते हैं। दामला केस्केकी प्लेटफॉर्म मुख्यधारा के विभिन्न तंत्रों के बारे में बात करती हैं। इस बीच, पाशा दश्तगार्ड इस बात पर गौर करते हैं कि मैनोस्फीयर ने कैसे पुरुषों के आत्म–सुधार नेटवर्क को वैचारिक युद्ध के मैदानों में बदल दियाय वह दिखाते हैं कि कैसे किसी के शरीर और पुरुषत्व को अनुकूलित करना कट्टरता का एक तंत्र बन जाता है। व्यापक सांस्कृतिक मोड़ से प्रेरित होकर, अति–दक्षिणपंथी कर्त्ताओं ने भी मुख्यधारा की संस्कृति की सतह के नीचे पहचान बनाने, विचारधारा का प्रसार करने और चरमपंथी आख्यानों को सामान्य बनाने के लिए फैशन को एक रणनीतिक उपकरण के रूप में तेजी से उपयोग किया है। एंड्रिया ग्रिप्पो दिखाती हैं कि अति–दक्षिणपंथी सौंदर्य संबंधी रणनीतियाँ कैसे पीढ़ियों के पार विकसित हुई हैं– प्रत्यक्ष उप–सांस्कृतिक शैलियों से लेकर विडंबनापूर्ण, अति–सामान्यीकृत फैशन तक – राजनीतिक घुसपैठ और सांस्कृतिक वैधता के साधन के रूप में सौंदर्यशास्त्र को हथियार बनाया गया है। अंत में, सुमरीन कालिया ने कई ऐसे तंत्रों की पहचान की है जिनके माध्यम से अति दक्षिणपंथ ने पाकिस्तान और उसके बाहर नागरिक समाज पर अतिक्रमण किया है, जबकि रॉबर्टो स्कारामुजिनो और सेसिलिया सैंटिल्ली ने उन विभिन्न तरीकों का विश्लेषण किया है जिनके माध्यम से लोकलुभावन शासन नागरिक समाज का पुनर्निर्माण करता है।

> विमर्शात्मक बदलावों पर ध्यान केंद्रित करना

तो फिर, यहां अति दक्षिणपंथ और अति दक्षिणपंथी लामबंदी पर मौजूदा शोध से क्या भिन्न है?

बहुत बड़ी संख्या में अध्ययन और लेख उन लोगों पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो अति दक्षिणपंथी पार्टियों (मुख्य रूप से पुरुष, सभी सामाजिक वर्गों से) को वोट देते हैं और पश्चिमी उदार लोकतंत्रों में उनके उदय का कारण बनते हैं। इनमें तीव्र आधुनिकीकरण के अनुभवों, सामाजिक असमानता, असुरक्षा की भावनाओं, राजनीतिक परिवेश और प्रतिनिधित्व की प्रणालियों में बदलाव, बहुसंकट, युद्ध और महामारी की भूमिका से निपटना शामिल है। अन्य सामाजिक स्तर पर ध्यान केंद्रित करते हैं और सामाजिक लामबंदी के प्रभाव के रूप में चरम दक्षिणपंथ के उदय पर शोध करते हैं।

सामान्यीकरण परिप्रेक्ष्य इस बात की जांच करता है कि सामाजिक मुख्यधारा के भीतर कर्त्ता और जातीय–राष्ट्रवादी विचारधाराओं को कैसे अपनाया जाता है और राजनीतिक, सांस्कृतिक और विमर्शात्मक रूप से कैसे फैलाया जाता है। राजनीतिक एजेंडों के दक्षिणपंथी बदलाव और लोकतांत्रिक समाजों पर इसके प्रभावों को समझना और उनका वर्णन करना इस परिप्रेक्ष्य का मुख्य केंद्र है। कई विशेषज्ञ और लेखक इस बात पर जोर देते हैं कि लोकतांत्रिक संस्थाओं और मूल्यों पर हमले अक्सर लोकतंत्र के भीतर से ही किए जाते हैं, जिससे इसकी संस्थाओं और मूल्यों का अपहरण हो जाता है।

विश्लेषणात्मक ध्यान चर्चात्मक बदलावों पर हैः सामान्यीकरण का पता उन शब्दों के उपयोग और प्रसार के माध्यम से लगाया जा सकता है जो पहले दक्षिणपंथी अभिनेताओं द्वारा इस्तेमाल किए जाते थे लेकिन अब मुख्यधारा के विमर्श में शामिल हो गए हैं और सामान्य हो गए हैं। यह प्रक्रिया राजनीतिक बहस और संस्कृति के परिवर्तन के साथ–साथ सार्वजनिक क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तनों को जन्म दे सकती है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, गलत सूचना को बढ़ावा देते हैं और कट्टरपंथी अभिनेताओं को बढ़ावा देते हैं, खासकर तब जब नफरत फैलाने वाले भाषणों को अब विनियमित नहीं किया जाता है। इससे ठोस नीतियाँ बनती हैं, उदाहरण के लिए, शरण कानून प्रतिबंध, जबरन सीमा नियंत्रण या यौन और लिंग आत्मनिर्णय में।

> मानव के असमान मूल्य की विचारधाराएँ भेदभाव आधारित पदानुक्रम को उचित ठहराती हैं

इस प्रकार सामान्यीकरण, दक्षिणपंथ के पारंपरिक अध्ययन से आगे बढ़कर लोकतांत्रिक मुख्यधारा के भीतर कर्त्ताओं की भूमिका पर प्रकाश डालता है। कट्टरपंथी मुख्यधारा की अवधारणा इन अंतर्दृष्टियों पर आधारित है और उन्हें एकीकृत करती है। लेकिन चरमपंथी हाशिये से मुख्यधारा तक के श्एकतरफा रास्तेश पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, हम मुख्यधारा को उसकी सभी अस्पष्टताओं और जटिलताओं में उजागर करते हैं, जहाँ पहले से मौजूद विचारधाराएँ, विश्व दृष्टिकोण और प्रथाएँ दक्षिणपंथी कर्त्ताओं और विचारधाराओं के साथ मिश्रित और एक दूसरे में मिल जाती हैं। न केवल लोकतांत्रिक विचारों, मूल्यों और प्रथाओं का विघटन किया जाता है, बल्कि उन्हें हाशिये पर भी धकेल दिया जाता है।

कुल मिलाकर, हम कट्टरपंथी मुख्यधारा को कर्त्ताओं, संस्थाओं और मीडिया के एक तेजी से बढ़ते घने नेटवर्क के रूप में परिभाषित करते हैं, जो भले ही औपचारिक रूप से चरम दक्षिणपंथी दलों से संबद्ध न हों, लेकिन वे उन बयानबाजी और पदों को अपनाते हैं या उनकी ओर रुख करते हैं जो कभी कट्टरपंथी राजनीतिक संरचनाओं से संबंधित थे।

हम मुख्यधारा को एक अत्यधिक विषम घटना के रूप में संदर्भित करते हैंः विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न पदों और पृष्ठभूमियों वाले सामाजिक कर्त्ताओं की एक विविध श्रेणी, जो विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में और कई अलग–अलग कारणों से चरम दक्षिणपंथी विचारधाराओं, गतिविधियों और दृष्टिकोणों को समायोजित, संरेखित, उचित ठहराते और सामान्य बनाते हैं। बदले में, कट्टरता से तात्पर्य बयानबाजी से लेकर कार्रवाई तक की उन प्रक्रियाओं से है, जिसमें मानव के असमान मूल्य की विचारधाराओं का उपयोग जाति, लिंग, अति–राष्ट्रवादी और भेदभाव आधारित पदानुक्रमों को उचित ठहराने और तीव्र करने के लिए किया जाता है; बहिष्कार के तरीके घृणा और हिंसा को भड़काते हैं और यहां तक कि व्यक्तियों और समूहों द्वारा हत्या भी कर सकते हैं।

> जटिल स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिणाम

यह सभी सामाजिक क्षेत्रों को प्रभावित करता हैः व्यक्तिगत, संगठनात्मक और संस्थागत स्तर पर राजनीति, संस्कृति, व्यवसाय, नागरिक समाज और सार्वजनिक क्षेत्र। इस संदर्भ में, कट्टरपंथी दक्षिणपंथ के सामान्यीकरण को सामाजिक स्वीकृति की प्रक्रिया के साथ–साथ एक संस्थागत घटना के रूप में भी देखा जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि में, कट्टरपंथ, अति–दक्षिणपंथी लामबंदी या मुख्यधारा में विमर्शात्मक बदलावों के चुनावी पहलुओं पर विशेष ध्यान देने से

>>

इस परिघटना की विकृत व्याख्या पैदा करने का जोखिम उठाता है। इसके बजाय, हमें जटिल अंतर्क्रियाओं, अस्पष्टताओं, बढ़ती सीमाओं और वैचारिक मतभेदों पर गौर करने की जरूरत है जो दोस्ताना पड़ोसियों, दोस्तों या परिवार के सदस्यों को अज्ञानता, घृणा या हिंसा के अपराधियों में बदल देते हैं। ऐसा करने से हमें लोकतांत्रिक और प्रगतिशील कर्त्ताओं, विचारों और प्रथाओं के गैर–सामान्यीकरण और हाशिए पर जाने के तंत्र में और अधिक गहराई से जाने का मौका मिलता है। उदार लोकतंत्र के लिए मौलिक निहितार्थ स्पष्ट हो जाते हैं: लोकतंत्र का विचार सामाजिक जीवन के स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक आयोजन सिद्धांत से सामूहिक रूप से से घटकर सामूहिक रूप से संगठित समानता, एकजुटता और आशा के छोटे–छोटे द्वीपों में बदल जाता है।

हम कट्टरपंथी मुख्यधारा के स्थानीय राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिणामों के केवल कुछ उदाहरण देते हैं। कई तथाकथित उदार लोकतंत्रों में, सामाजिक आंदोलन और प्रगतिशील नागरिक समाज जिसमें श्रम, महिला, स्ळठज्फ, जलवायु और शांति और (फिलिस्तीन) एकजुटता आंदोलन, साथ ही लोकतंत्र समर्थक आंदोलन शामिल हैं, तेजी से अपराधी बन रहे हैं, चुप किये जा रहे हैं और दमित हो रहे हैं। सीमाओं को बंद करना और शरणार्थियों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाना विस्थापित लोगों की संरक्षण और आश्रय की स्थिति को और खराब कर देता है – उनके भागने के मार्गों के संदर्भ में भी तथा शरण पाने के उनके अधिकार का प्रयोग करने की उनकी क्षमता के संदर्भ में भी। शक्तिशाली उद्योगों द्वारा जलवायु लक्ष्यों की अवहेलना वैश्विक जलवायु को प्रभावित करती है, क्योंकि यह कोई सीमा या राष्ट्रीय हितों को नहीं जान ती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्थाएं भी दांव पर हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि यूरोपीय संघ, जो कभी शांति और फासीवाद–विरोधी का गढ़ था, वह अंदर और बाहर से कट्टरपंथी मुख्यधारा के दबाव से बच पाएगा या नहीं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा समर्थित मानवतावादी अवधारणाएँ बदनाम हो जाती हैं और फंडिंग वापिस ले ली जाती हैं, जिससे दुनिया भर में मानवीय सहायता पर निर्भर लाखों लोगों के जीवन खतरे में पड़ जाता हैं। बढ़ता राष्ट्रवाद वैश्विक समस्याओं को संबोधित करने और प्रबंधित करने के लिए हाल के दशकों में विकसित बहुपक्षवाद को कमजोर कर रहा है। यह व्यापार, जलवायु, प्रवास और सुरक्षा गठबंधन जैसे क्षेत्रों में पहले से संपन्न समझौतों से बातचीत या वापसी के बहिष्कार में स्पष्ट है। व्यापार के क्षेत्र के संबंध में, बढ़ी हुई टैरिफ और व्यापार युद्धों (की धमकी) के माध्यम से संरक्षणवादी आर्थिक नीतियों को लागू किया जा रहा है।

> लोकतंत्र के नवीनीकरण और पुनर्आविष्कार के लिए एक शोध एजेंडा

ये केवल कुछ उदाहरण हैं कि कैसे कट्टरपंथी मुख्यधारा का न्यू नार्मल पहले से ही मानवाधिकारों और लोकतंत्र की सुरक्षा, प्रवर्तन, प्रशंसा और दृश्यता के क्षरण में योगदान दे रहा है और इसकी आगे भी योगदान देने की उम्मीद है। अगर हम मुख्यधारा के कट्टरपंथीकरण को रोकना और उलटना चाहते हैं, तो हम दृढ़ता से आश्वस्त हैं कि मुख्यधारा के कट्टरपंथीकरण के तंत्र को बेहतर ढंग से समझने के लिए हमें गहन अनुभवजन्य विश्लेषण और अंतर–देशीय तुलना की आवश्यकता है। यह समझना कि मुख्यधारा का कट्टरपंथीकरण किस प्रकार अंततः उसके वि–कट्टरपंथीकरण के लिए अवधारणाओं को विकसित करने में योगदान दे सकता है, 'आशा के दर्शन' पर गौर करना, जहां लोकतांत्रिक मूल्यों, प्रथाओं और समुदायों को बहाल, पुनर्जीवित और नवीनीकृत किया जाता है। दोनों को एक साथ लेते हुए, कट्टर दक्षिणपंथीकरण के सामान्यीकरण और लोकतांत्रिक वि–सामान्यीकरण की गतिशीलता को शोध एजेंडे को आकार देना चाहिए ताकि हम भविष्य में लोकतंत्र के नवीनीकरण और पुनर्निर्माण में योगदान दे सकें। ■

सभी पत्राचार सबरीना जाजक को <zajak@dezim-institut.de> पर प्रेषित करें।

> "कट्टरपंथी" दक्षिणपंथ से मुख्यधारा के दक्षिणपंथ तक:
एक बदलती यूरोपीय पार्टी प्रणाली

टेरी गिवेंस, यूनिवर्सिटी अश्वफ ब्रिटिश कोलंबिया, कनाडा द्वारा

दक्षिणपंथी राजनीति के विकास में प्रमुख शब्द। लेखक द्वारा निर्मित चित्र।

सन् 1990 के दशक के मध्य में जब से मैंने कट्टरपंथी दक्षिणपंथ का अध्ययन करना शुरू किया है, तब से मैंने जो रुझान देखे हैं, उनमें से एक यह है कि उस समय जो विचार "कट्टरपंथी" माने जाते थे, वे आज मुख्यधारा बन गए हैं। जब मैं कट्टरपंथी दक्षिणपंथ पर अपनी पहली पुस्तक पर काम कर रही थी, तो कई शोधकर्ताओं ने मुझे हतोत्साहित किया, क्योंकि वे कट्टरपंथी दक्षिणपंथी पार्टियों को "क्षणभंगुर" मानते थे। हालाँकि, ये पार्टियाँ चुनावी परिदृश्य में एक स्थायी ताकत बन गई हैं। जैसा कि मैंने अपनी पुस्तक *द रूट्स ऑफ रेसिस्म* में उल्लेख किया है, 'दक्षिणपंथी राजनीति आप्रवासियों को राजनीति के भीतर विदेशी वस्तुओं के रूप में पेश करती है और उन्हें अपराध और बेरोजगारी की उच्च दरों सहित कई सामाजिक बुराइयों के लिए दोषी ठहराती है।' जिसे कभी कट्टरपंथी माना जाता था, वह मुख्यधारा बन गया है, खासकर आप्रवासी विरोधी भावना और इस्लामोफोबिया के संदर्भ में।

> जबरदस्त दक्षिणपंथी बदलाव

1980 के दशक में जब कट्टर दक्षिणपंथी पार्टियों ने चुनावी परिदृश्य में प्रवेश किया, तो इन पार्टियों से लड़ने के लिए एक अभिजात वर्ग की आम सहमति विकसित हुई, जिसके तहत एक 'कॉर्डन सैनिटेयर' (बाधा) बनाए रखी गई, जिसने दक्षिणपंथी राजनेताओं को कट्टर दक्षिणपंथी के उम्मीदवारों के साथ सहयोग करने से रोक दिया, जबकि वामपंथी मतदाताओं को मुख्यधारा के उम्मीदवारों का समर्थन करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह आम सहमति तब टूट गई जब 9/11 के बाद पूरे यूरोप में रूढ़िवादी सरकारें सत्ता में आईं और आतंकवाद ने श्रम नीति से आव्रजन पर ध्यान हटाकर सुरक्षा मुद्दों पर केंद्रित कर दिया। ऑस्ट्रियाई स्वतंत्रता पार्टी (FPÖ) 2000 में ऑस्ट्रियाई सरकार का हिस्सा बन गई, आंशिक रूप से इसलिए क्योंकि उन्हें एक भव्य गठबंधन सरकार के एकमात्र विकल्प के रूप में देखा गया था। सरकार का हिस्सा होने से उस समय कम से कम पार्टी के नेताओं को नरमी महसूस हुई, लेकिन हाल के वर्षों में यह अधिक कड़े आप्रवासी विरोधी स्वर में वापस आ गया है

2000 के दशक के प्रारंभ में गठबंधन सरकारों में ऑस्ट्रियाई स्वतंत्रता पार्टी, डेनिश पीपुल्स पार्टी और अन्य कई दक्षिणपंथी दलों की भागीदारी ने इन दलों के लिए अधिक सफलता के द्वार खोल दिए। यूरोप में 2014 के यूरोपीय संसद चुनाव में कट्टर

>>

दक्षिणपंथी दलों के लिए समर्थन बढ़ गया, जिसने 2016 की गर्मियों में यूके में सफल ब्रेक्सिट वोट का पूर्वाभास दियाय और यह समर्थन 2019 में बढ़ेगा जब मरीन ले पेन की दक्षिणपंथी नेशनल रैली पार्टी (रैसेम्बलमेंट नेशनल) ने राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रोन की पार्टी गठबंधन को 23: वोट के साथ मामूली अंतर से हराया। रैसेम्बलमेंट नेशनल, जो अपने पूर्व अवतार, फ्रंट नेशनल के अधिकांश पदों को बरकरार रखता है, यूरोपीय संसद और फ्रांसीसी विधानसभा में एक नियमित इकाई बन गया है। 1990 के दशक के मध्य में जब से मैंने राजनीतिक दलों पर शोध करना शुरू किया है, तब से यूरोप में दलीय राजनीति में जबरदस्त दक्षिणपंथी बदलाव आया है। हमने वामपंथी सामाजिक लोकतांत्रिक और साम्यवादी पार्टियों के प्रति समर्थन में गिरावट देखी है, विशेष रूप से फ्रांस में। परिवर्तन के व्यापक संदर्भ को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है क्योंकि हमने दलीय राजनीति के हाशिये से निकलकर कट्टरपंथी दक्षिणपंथ को मुख्यधारा में आते देखा है।

> इस सदी में कट्टरपंथी दक्षिणपंथी दलों के लिए चुनावी समर्थन में वृद्धि

2000 के दशक की शुरुआत से यूरोप में लगभग हर चुनाव में, कट्टरपंथी दक्षिणपंथी दलों ने विधायी चुनावों में अपना समर्थन बढ़ाया है और स्पष्ट रूप से मुख्यधारा की राजनीति का हिस्सा बन गए हैं। सितंबर 2022 में, स्वीडन डेमोक्रेट्स 73 सीटों के साथ रिक्सडैग में दूसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गई। 2024 में फ्रांस में, अचानक होने वाले विधान सभा चुनाव में, रैसेंब्लमेंट नेशनल (RN) को 37 प्रतिशत वोट मिले, हालांकि वामपंथी दलों के रणनीतिक समन्वय के कारण उन्हें अपेक्षित संख्या में सीटें नहीं मिलीं। जर्मनी में अल्टरनेटिव फर डॉयचलैंड (एएफडी) फरवरी 2025 में जर्मनी की दूसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गई, जिसने लगभग 21 प्रतिशत वोट जीते, जो 2021 के चुनाव से उनके वोट का हिस्सा दोगुना है।

2022 के बाद से कई पार्टियाँ चुनावों में पहले स्थान पर आई हैं, जब नव–फासीवादी राजनीतिज्ञ जियोर्जिया मेलोनी के गठबंधन, ब्रदर्स ऑफ इटली ने इटली में सरकार बनाने के लिए पर्याप्त वोट जीते और मेलोनी प्रधानमंत्री बने। नीदरलैंड में, गीर्ट वाइल्डर्स की पार्टी फॉर फ्रीडम (च्टट) ने नवंबर 2023 के चुनाव में सबसे ज्यादा सीटें जीतीं, लेकिन विवादास्पद गठबंधन वार्ता के कारण जुलाई 2024 तक सरकार नहीं बन पाई, जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री के रूप में एक स्वतंत्र लोकसेवक करेंगे। बेशक, विक्टर ओर्बन ने 2010 से हंगरी में सत्ता संभाली है, और उनकी उदारवादी सरकार यूरोपीय संघ के लिए एक कांटा रही है।

> लोकलुभावन अपील, नस्लवाद और अल्पसंख्यकों के डर से श्रमिक वर्ग का समर्थन बढ़ रहा है

ऐसा लगता नहीं है कि बहुत समय पहले तक अति–दक्षिणपंथी या कट्टर दक्षिणपंथी पार्टियों को गंभीरता से नहीं लिया जाता था, लेकिन उनकी भूमिका अब चिरस्थायी विपक्ष से बदलकर राजनीतिक सत्ता के गंभीर दावेदार बन गई है। जब से मैंने 1990 के दशक के मध्य में कट्टर दक्षिणपंथ का अध्ययन करना शुरू किया है, तब से नस्ल और आव्रजन की राजनीति के मुद्दों से जुड़े मानदंड स्पष्ट रूप से बदल गए हैं। 1999 में, जब जोएर्ग हैदर की फ्रीडम पार्टी ऑस्ट्रियाई विधायी चुनाव में दूसरे स्थान पर आई, तो उस समय अन्य चौदह यूरोपीय संघ (ईयू) देशों ने आव्रजन और ईयू पर उनके रुख को अस्वीकार्य माना। हालांकि वे वोट के नतीजे को नहीं बदल सके, लेकिन उन्होंने इन मुद्दों पर अपना रुख दर्शाने के लिए कदम उठाए, जिसमें 2000 में नस्लीय समानता निर्देश (RED) को पारित करना भी शामिल है, जो भेदभाव–विरोधी नीति के समर्थन के तौर पर था। यूरोप में कट्टरपंथी दक्षिणपंथी पार्टियां लोकलुभावन अपील का इस्तेमाल करती हैं और तर्क देती हैं कि वे "आम आदमी" के पक्ष में हैं और अभिजात वर्ग के खिलाफ हैं। वे अक्सर बाहरी लोगों से सुरक्षा के लिए तानाशाही रवैया अपनाते हैं तथा पार्टी या नेताओं के प्रति अंध वफादारी की अपेक्षा करते हैं। इसका एक अन्य घटक नस्लवाद और अल्पसंख्यकों तथा आप्रवासियों के प्रति भय है, जिसका उपयोग यूरोप में राजनीतिज्ञों द्वारा मतदाताओं, जो विशेषाधिकार खोने और अंततः राजनीतिक प्रभुत्व खोने से डरते हैं, को लामबंद करने के लिए किया जा रहा है।

2000 के दशक के प्रारंभ से, शोधकर्ताओं ने पाया है कि कट्टर–दक्षिणपंथी उम्मीदवारों को श्रमिक वर्ग के मतदाताओं का समर्थन बढ़ता जा रहा है। 1990 के दशक के मध्य से अंत तक एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन, यूके के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर और जर्मन चांसलर गेरहार्ड श्रोएडर जैसे मध्य–वाम राजनेताओं की सफलता थी। इन नेताओं ने आर्थिक नीति के लिए एक नव–उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया जो शासन के लिए अधिक व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का समर्थन करता था। इन नीतियों ने समग्र रूप से आर्थिक विकास में योगदान दिया, लेकिन उन्होंने कामकाजी वर्ग के लिए मजदूरी या लाभ में सुधार करने के लिए बहुत कम काम किया और और धन असमानता को बढ़ाया। अगर मध्य–वाम की आर्थिक नीतियों ने कामकाजी वर्ग के मतदाताओं के जीवन स्तर में सुधार किया होता, तो यह संभावना है कि वे कट्टर दक्षिणपंथियों के संदेशों के प्रति इतने खुले नहीं होते। इसके बजाय, मजदूरी स्थिर रही, तथा विनिर्माण क्षेत्र में नौकरियों के साथ–साथ यूनियन की सदस्यता में भी गिरावट आई।

> भविष्य में क्या हो सकता है

राजनीति एक निरंतर विकसित होने वाला परिदृश्य है, और लोकतंत्र की संभावनाओं के बारे में निराशावादी होना आसान है क्योंकि गैर–उदारवादी राजनेता न केवल यूरोप में, बल्कि अमेरिका में भी लाभ कमा रहे हैं। हम आशा कर सकते हैं कि दक्षिणपंथी राजनेता लोकतंत्र से जुड़ाव बनाए रखेंगे, और मतदाता उन पार्टियों का समर्थन करेंगे जो स्पष्ट रूप से लोकतांत्रिक मानदंडों के अनुरूप हैं। यह केवल समय ही बताएगा कि क्या विमर्श लोकतांत्रिक मानदंडों का समर्थन करने की ओर लौटेगा और क्या उन मानदंडों को मतदाताओं का समर्थन प्राप्त होगा।

इस बीच, शोधकर्ताओं को अपने मात्रात्मक और गुणात्मक विश्लेषण जारी रखने की आवश्यकता होगी, क्योंकि हम मतदाता व्यवहार और राजनीतिक दलों द्वारा की गई अपीलों को प्रभावित करने वाले राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रभावों को समझने और समझाने का प्रयास करेंगे। ■

सभी पत्राचार टेरी गिवेंस को <terri.givens@ubc.ca> पर प्रेषित करें।

> हाशिये से फीड तक: अति दक्षिणपंथ का मंचीय मुख्यधाराकरण

दमला केसकेकसी, स्कुओला नॉर्मले सुपीरियर, इटली द्वारा

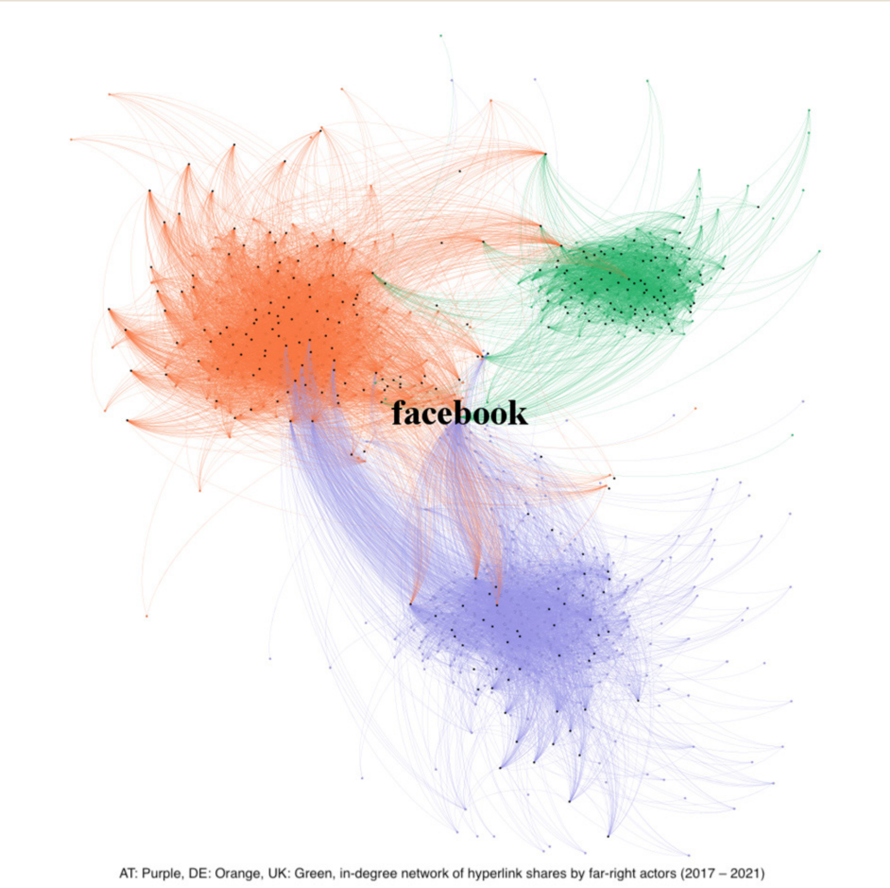

ऑस्ट्रियाः बैंगनीय जर्मनीः नारंगीय यूनाइटेड किंगडमः हरा। अति–दक्षिणपंथी अभिनेताओं (2017–2021) के फेसबुक पेजों पर साझा किए गए हाइपरलिंक्स का इन–डिग्री नेटवर्क। लेखक द्वारा निर्मित चित्र।

एक समय हाशिये तक सीमित रहे अति–दक्षिणपंथी कर्ता, राजनीतिक मुख्यधारा में खुद को सामान्य, वैध कर्ताओं के रूप में पुनः स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। लिरियम स्पोनहोल्ज के साथ मिलकर, 'रेडिकलीजिंग द मेनस्ट्रीम इन वेस्टर्न यूरोप' अध्ययन में, हम यह पता लगाते हैं कि जर्मनी में अति–दक्षिणपंथी – जिसमें राजनीतिक दलों से लेकर वैकल्पिक मीडिया और सामाजिक आंदोलनों तक के विभिन्न कर्ता शामिल हैं – फेसबुक पर हाइपरलिंक का रणनीतिक रूप से कैसे उपयोग करते हैं। 100 सार्वजनिक फेसबुक पेजों (2017–2020) के 120,000 से अधिक पोस्टों के डेटासेट के आधार पर, हमारा विश्लेषण बताता है कि कैसे प्लेटफॉर्म की गतिशीलता राजनीतिक संचार को आकार देती है और *प्लेटफॉर्म–आधारित मुख्यधारा* में योगदान करती है।

हम तीन प्रमुख तंत्रों की पहचान करते हैं जो अति–दक्षिणपंथी कर्ताओं के लिए इस प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं: (1) ऐसे नेटवर्क स्थापित करना और बनाए रखना जिनके माध्यम से वे स्वयं को 'सामान्य' के रूप में प्रस्तुत करते हैं, (2) मुख्यधारा की मीडिया सामग्री साझा करके वैधता प्राप्त करनाय, और (3) अपने संदेशों का प्रसार जारी रखने के लिए प्लेटफॉर्म की सीमाओं के अनुकूल ढलना। इसके परिणामस्वरूप होने वाला दोहरा आंदोलन – अति–दक्षिणपंथी सामान्यीकरण जो मुख्यधारा के कट्टरपंथ की ओर ले जाता है – एक व्यापक सामाजिक–राजनीतिक प्रवृत्ति का संकेत देता है; एक ऐसी प्रवृत्ति जो हाशिये और केंद्र, ऑनलाइन और ऑफलाइन, अतिवादी और उदारवादी के बीच की सीमाओं को धुंधला कर देती है।

> प्लेटफॉर्म तर्क और हाइपरलिंक का रणनीतिक उपयोग

अति–दक्षिणपंथी कर्ता डिजिटल प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं करते, बल्कि वे अपने तर्क के अनुसार ढलते हुए रणनीतिक रूप से अपनी सीमाओं को पार करने की कोशिश

>>

करते हैं। उदाहरण के लिए, फेसबुक का प्लेटफॉर्म तर्क, जुड़ाव के जरिए दृश्यता को बढ़ावा देता है। ऐसी सामग्री जो प्रतिक्रियाओं (लाइक, प्यार, हाहा, वाह, दुख, गुस्सा), टिप्पणियों औरध्या शेयर को बढ़ावा देती है, उसके अन्य उपयोगकर्ताओं के न्यूजफीड पर प्रसारित होने की संभावना ज्यादा होती है। यहाँ, हाइपरलिंक एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभर कर आते हैं। अन्य बातों के अलावा, हाइपरलिंक वैचारिक रूप से जुड़े आख्यानों को प्रसारित करने और अति–दक्षिणपंथी कलाकारों को जोड़ने का काम करते हैं।

हाइपरलिंक्स का रणनीतिक उपयोग प्लेटफॉर्म–आधारित मुख्यधाराकरण के लिए एक तंत्र प्रस्तुत करता है। अति–दक्षिण ापंथी कर्ता मुख्यतः हाइपरलिंक्स का उपयोग नेटवर्क रखरखाव, आत्म–प्रचार और प्रवर्धन के लिए करते हैं। उल्लेखनीय रूप से, अति–दक्षिणपंथी वैकल्पिक मीडिया आउटलेट, जैसे ब्लॉग टिचिस आइन्ब्लिक और रूस–प्रायोजित मीडिया साइट रशिया टुडे डीई (RT DE), कुछ ही डोमेन से हजारों लिंक पोस्ट करते हुए 'सुपर–शेयरर्स' के रूप में कार्य करते हैं। अन्य अति–दक्षिणपंथी कर्ता, जैसे राजनीतिक दल (AfD–अल्टरनेटिव फर डॉयचलैंड) और सामाजिक आंदोलन (PEGIDA)–पैट्रियटिश यूरोपर गेगेन डाई इस्लामिजिएरंग डेस एबेंडलैंड्स), 'सुपर–स्प्रेडर्स' के रूप में कार्य करते हैं, जो व्यापक स्रोतों से लिंक वितरित करते हैं। ये लिंक–शेयरिंग प्रथाएँ न केवल फेसबुक पर अति–दक्षिणपंथी पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर आंतरिक सामंजस्य को मजबूत करती हैं, बल्कि इसकी सार्वजनिक छवि को फिर से गढ़ने में भी मदद करती हैं।

> वायरलिटी नहीं दृश्यता: रणनीतियों में बदलाव

अति–दक्षिणपंथी लोगों की सोशल मीडिया रणनीतियाँ वायरल होने के लिए शेयर–योग्यता हासिल करने से कहीं आगे जाती हैं। इसके बजाय, वे लगातार दिखाई देने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यहीं पर प्लेटफॉर्म–आधारित मुख्यधाराकरण की अवधारणा महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यह न केवल अति–दक्षिणपंथ के इरादों से प्रेरित होती है, बल्कि सोशल मीडिया की अनुमति और सीमाओं से भी प्रेरित होती है। फेसबुक जैसे मुख्यधारा के प्लेटफॉर्म इस प्रक्रिया में एक विरोधाभासी भूमिका निभाते हैं। वे द्वारपाल और प्रवर्तक दोनों की भूमिका निभाते हैं। विडंबना यह है कि उनके प्लेटफॉर्म नियम, जो अतिवादी सामग्री को नियंत्रित करने और रोकने के लिए बनाए गए हैं, अंततः अति–दक्षिणपंथ के सामान्यीकरण में योगदान दे सकते हैं।

उदाहरण के लिए, कैम्ब्रिज एनालिटिका घोटाले के बाद, 2018 में डिप्लेटफॉर्माइजेशन की लहर ने फेसबुक से कई अति–दक्षिणपंथी कर्त्ताओं को हटा दिया। हालाँकि, यह अभी भी दुनिया भर में सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया जाने वाला सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म बना हुआ है और अति–दक्षिणपंथी कर्त्ताओं द्वारा इसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। हमारे अध्ययन में, हमने पाया कि हमारी जाँच अवधि के दौरान अति–दक्षिणपंथी कर्त्ताओं की संख्या लगभग स्थिर रही, जिससे फेसबुक जर्मन अति–दक्षिणपंथ के भीतर/उनके लिए एक महत्वपूर्ण स्थान पर बना रहा।

> सूक्ष्म रूपरेखा और आत्म–संबंध, अति–दक्षिणपंथी कर्त्ताओं की दृश्यता बनाए रखते हैं

हालाँकि 2018 के बाद हाइपरलिंक का उपयोग थोड़ा कम हुआ, फिर भी फेसबुक पर शेष अति–दक्षिणपंथी कर्त्ताओं के बीच यह एक निरंतर रणनीति बनी रही। वास्तव में, हमारे डेटासेट में हाइपरलिंक के सभी शेयरों का 69% अति–दक्षिणपंथी मीडिया और व्यावसायिक कर्त्ताओं के पास था। प्लेटफॉर्म पर अति–दक्षिणपंथी कर्त्ताओं की निरंतर उपस्थिति संयोग नहीं है, बल्कि दृश्यमान और प्रभावशाली बने रहने के लिए मुख्यधारा के प्लेटफॉर्म के नियमों का पालन करने की सोची–समझी रणनीतियों का परिणाम है।

फेसबुक के प्लेटफॉर्म तर्क और सामुदायिक दिशानिर्देशों के अनुरूप, अति–दक्षिणपंथी कर्ता अक्सर खुलेआम नफरत फैलाने वाले भाषण देने या विवादास्पद अतिवादी स्रोतों से लिंक साझा करने से बचते हैं। ऐसा करके, वे प्रदर्शनात्मक संयम बरतते हैं। वे अपनी बयानबाजी को कमजोर करते हैं, स्पष्ट कार्रवाई के आह्वान के बजाय सूक्ष्म रूपरेखा पर ध्यान केंद्रित करते हैं, और बाहरी वेबसाइटों से लिंक करते हैं जिनकी निगरानी करना कठिन होता है।

इस दृष्टिकोण का एक पूर्वोक्त उदाहरण अति–दक्षिणपंथी वैकल्पिक मीडिया आउटलेट्स RT DE और टिचिस आइन्ब्लिक द्वारा अपनाया जाता है, जो लगभग पूरी तरह से फेसबुक पर अपनी तृतीय–पक्ष सामग्री से स्वयं–लिंकिंग करते हैं। यह रणनीति उन्हें प्रत्यक्ष सामग्री मॉडरेशन को दरकिनार करने, दृश्यता बनाए रखने और व्यापक दर्शकों के सामने एक अधिक उदार छवि प्रस्तुत करने की अनुमति देती है, जबकि वे अपने पसंदीदा बहिष्कारवादी और अनुदारवादी एजेंडों को बढ़ावा देते रहते हैं।

> 'उधार' वैधता और मुख्यधारा मीडिया की भूमिका

प्लेटफॉर्म–आधारित मुख्यधाराकरण का एक अन्य महत्वपूर्ण तंत्र मुख्यधारा के मीडिया से 'उधार ली गई' वैधता का उपयोग है। हमारे अध्ययन में सबसे उल्लेखनीय निष्कर्षों में से एक यह था कि अति–दक्षिणपंथी कर्ता अक्सर अपने फेसबुक पेजों पर वैकल्पिक मीडिया स्रोतों के बजाय मुख्यधारा के मीडिया आउटलेट्स से लिंक करते हैं। इसके अलावा, साझा किए जाने वाले लिंक के प्रकार कर्ता के प्रकार के आधार पर भिन्न होते हैं। जहाँ AfD के पेज मुख्य रूप से Die Welt जैसे राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों के लेख साझा करते हैं, वहीं PEGIDA Bild और Nordbayern जैसे टैब्लॉइड और क्षेत्रीय आउटलेट्स को प्राथमिकता देता है।

पारंपरिक मीडिया से वैधता उधार लेने से अति–दक्षिणपंथी कर्ता अपने संदेशों को विश्वसनीय स्रोतों से प्राप्त संदेश के रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं। इस तरह के तंत्र का उपयोग इस ओर भी इशारा करता है कि मुख्यधारा और हाशिए पर पड़े लोगों के बीच की सीमाएँ शायद उससे कहीं अधिक छिद्रपूर्ण हो गई हैं जितना कि कई लोगों ने अनुमान लगाया है। अति–दक्षिणपंथ को अब अपनी सारी सामग्री स्वयं तैयार करने की आवश्यकता नहीं है। इसके बजाय, वह मुख्यधारा के माध्यमों से चुनिंदा सामग्री चुनता है जिसे उसके आव्रजन–विरोधी, अभिजात्य–विरोधी, या इस्लाम–विरोधी रुख के समर्थन में पुनर्परिभाषित किया जा सकता है।

> लोकतंत्र पर प्रभाव

जैसा कि फेसबुक पर जर्मन अति–दक्षिणपंथी के मामले से स्पष्ट है, *प्लेटफॉर्म–आधारित मुख्यधाराकरण* वैश्विक स्तर पर अति–दक्षिणपंथी ऑनलाइन संचार की विकसित होती गतिशीलता की एक आकर्षक कहानी प्रस्तुत करता है। आज हम जो देख रहे हैं, वह केवल 'मुख्यधारा का कट्टरपंथीकरण' या 'कट्टरपंथियों का मुख्यधारा में आना' नहीं है। बल्कि, यह परस्पर सुदृढ़ीकरण की एक प्रक्रिया है : मुख्यधारा के प्लेटफॉर्म पर सक्रिय बने रहने के लिए, अति–दक्षिणपंथी कर्ता अपनी रणनीतियों को प्लेटफॉर्म के नियमों के अनुसार ढालते हैं, जबकि प्लेटफॉर्म तर्क अतिवादी सामग्री को ऐसे स्वरूपों में पुनः प्रस्तुत करने में सक्षम बनाते हैं जो उदार प्रतीत होते हैं।

>>

इस गतिशीलता के गहरे निहितार्थ हैं। यह तथ्य–जांच, सामग्री मॉडरेशन और डीप्लेटफॉर्माइजेशन जैसी प्रति–रणनीतियों की प्रभावशीलता को चुनौती देता है। प्लेटफॉर्म–आधारित मुख्यधाराकरण के तंत्रों का लाभ उठाकर, अति–दक्षिणपंथी कर्ता सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर काम करना जारी रखते हैं – मुख्यधारा की मीडिया सामग्री को उधार लेकर, संचार के 'सुरक्षित' रूपों की ओर रुख करके, या दर्शकों को तृतीय–पक्ष वेबसाइटों की ओर निर्देशित करके। अंततः, अब सवाल यह नहीं है कि अति–दक्षिणपंथियों को मुख्यधारा के प्लेटफॉर्म पर अनुमति दी जानी चाहिए या नहींय ये प्लेटफॉर्म पहले से ही अति–दक्षिणपंथी ऑनलाइन प्रदर्शनों की सूची में अच्छी तरह से एकीकृत हैं।

ज़्यादा जरूरी सवाल यह है कि अगर प्लेटफॉर्म के सिद्धांत बदल जाएँ तो क्या होगा? दरअसल, जनवरी 2025 में, मेटा ने फेसबुक से थर्ड–पार्टी फैक्ट–चेकिंग को हटा दिया और उसकी जगह 'कम्युनिटी नोट्स' शुरू कर दिए, जो यूजर्स द्वारा तैयार किए जाएँगे। अनुमत सामग्री, खासकर आव्रजन और लैंगिक पहचान जैसे मुद्दों से संबंधित, पर दिशानिर्देशों को भी अपडेट किया गया, जिससे मॉडरेशन के प्रयासों को केवल गंभीर और अवैध मामलों तक सीमित कर दिया गया। प्लेटफॉर्म पर मुख्यधारा में आने के लिए ऐसे बदलावों का क्या मतलब हो सकता है?

हमारे निष्कर्ष बताते हैं कि ये घटनाक्रम ऑनलाइन अति–दक्षिणपंथियों की गतिविधियों को और बढ़ा सकते हैं, मुख्यधारा के कट्टरपंथ को और तेज कर सकते हैं, और उदार लोकतंत्रों के लिए एक व्यापक चुनौती पेश कर सकते हैं। सख्त कंटेंट मॉडरेशन प्रयासों के बावजूद, फेसबुक ने अति–दक्षिणपंथी कर्ताओं को मुख्यधारा में लाने में एक भूमिका निभाई है। यह नया प्लेटफॉर्म तर्क, जो अति–दक्षिणपंथियों के लिए ज़्यादा स्वागतयोग्य लगता है, अति–दक्षिणपंथी कर्ताओं को अपने विचारों को और ज़्यादा स्वतंत्र रूप से प्रसारित करने में सक्षम बना सकता है, जिससे मुख्यधारा के राजनीतिक विमर्श में उनकी उपस्थिति और भी सामान्य हो जाएगी।

परिणामस्वरूप, सोशल मीडिया पर अति दक्षिणपंथी विचारधारा से निपटने के लिए केवल तथ्य–जांच प्रयासों, सामग्री नियंत्रण व्यवस्थाओं, राज्य निगरानी या अकादमिक शोध पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। जैसे–जैसे अति दक्षिणपंथी कर्ता अंततः अपने आख्यानों को आगे बढ़ाने के लिए बदलते प्लेटफॉर्म तर्कों के अनुकूल ढलते जाते हैं, दृश्यता का कोई भी ढाँचा अतिवादी सामग्री को मुख्यधारा में लाने का माध्यम बन सकता है। इस समस्या से निपटने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म को स्वयं कर्ता के रूप में देखे, न कि तटस्थ वातावरण के रूप में, बल्कि अपने स्वयं के राजनीतिक एजेंडे वाली लाभ–प्रेरित निजी कंपनियों के रूप में। ■

सभी पत्राचार दामला के स्कीकिस को <damla.keskekci@sns.it> पर प्रेषित करें।

> पुरुषत्व का अनुकूलन:

पुरुषों के आत्म–सुधार नेटवर्क और वैचारिक युद्धक्षेत्र

पाशा दश्तगर्द, ध्रुवीकरण और उग्रवाद अनुसंधान और नवाचार प्रयोगशाला, अमेरिकी विश्वविद्यालय, वाशिंगटन, संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा

लड़के और पुरुष इस बात से परेशान रहते हैं कि वे जो हैं और जो उनसे अपेक्षित है, उसके बीच कितना अंतर है। श्रेय : एलियास शेफरले, पिक्साबे।

> परिचय

ऑनलाइन ऐसे स्थान कम होते जा रहे हैं जो लड़कों और पुरुषों के लिए हैं और जो पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा के प्रभाव से मुक्त हैं। इनमें से कई पुरुष–केंद्रित स्थान, जो मूल रूप से सलाह, समर्थन और सौहार्द खोजने के स्थान के रूप में उभरे थे, इसके बजाय कट्टरपंथ के लिए प्रजनन स्थल बन गए हैं। चाहे डेटिंग और रिलेशनशिप फोरम हों, फिटनेस और फैशन समुदाय हों, या गेमिंग और खेल चर्चा मंच हों, घृणित सेक्सिस्ट बयानबाजी तेजी से सामान्य होती जा रही है। प्रतिक्रियावादी विश्वासों को सूक्ष्म रूप से अराजनीतिक या आत्म–सुधार–केंद्रित सामग्री के साथ शामिल करना चरमपंथी विचारों की उपस्थिति को पहचानना मुश्किल बनाता है, जिससे उनके प्रसार में और सुविधा होती है।

इन अलग–अलग पुरुष–केंद्रित ऑनलाइन स्पेस में एक ऐसी रेखा देखी जा सकती है जो आत्म–अनुकूलन पर गहन ध्यान केंद्रित करती है। इस संदर्भ में आत्म–अनुकूलन को निरंतर आत्म–सुधार पर केंद्रित एक सतत, व्यक्तिगत रणनीति के रूप में समझा जाता है, जो अक्सर सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत आकांक्षाओं से प्रेरित होती है। जबकि आत्म–सुधार अपने आप में पूरी तरह से स्वस्थ है, आत्म–अनुकूलन पर ध्यान केंद्रित करने से आत्म–ट्रैकिंग अभ्यास, फिटनेस प्रशिक्षण, कॉस्मेटिक सर्जरी, न्यूरो संवर्द्धन, आहार पूरक के उपयोग और डेटिंग और रिश्तों के लिए एक कठोर, सूत्रबद्ध रणनीति और दृष्टिकोण को अपनाने के माध्यम से अपने शरीर और जीवन शैली को 'अधिकतम' करने का जुनून हो सकता है। आत्म–अनुकूलन कथा कई बहु–मिलियन–डॉलर के उद्योगों में योगदान देती है जो आंतरिक शर्म, आत्म–घृणा और मर्दानगी के एक आदर्श रूप को प्राप्त करने के लिए मन–से–पदार्थ की मजबूरी के माध्यम से फैलती है। इन विचारों को आंतरिक बनाने से गैर–आत्म–अनुकूलक या असफल अनुकूलक को कमतर, विशेष रूप से खुद के लिए कमतर के रूप में देखा जाता है। इससे लड़कों और पुरुषों पर शारीरिक फिटनेस, यौन कौशल और वित्तीय सफलता का एक असंभव संयोजन हासिल करने का जबरदस्त दबाव पड़ता है, इससे कम कुछ भी पुरुषत्व को सही ढंग से मूर्त रूप देने में असमर्थता का प्रमाण होगा।

> >

जीवन के सभी क्षेत्रों में खुद को अनुकूलित करने की यह चिंता वैचारिक शिक्षा के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ाती है। हेनफ्लर (2004) ने विशेष रूप से नोट किया है कि कैसे आत्म–नियंत्रण और नैतिक शुद्धता के बारे में व्यक्तिगत चिंताओं को उप–सांस्कृतिक प्रतिरोध और समूह पहचान निर्माण के लिए हथियार बनाया जा सकता है। जबकि खुद को बेहतर बनाने की चाहत एक योग्य और प्रशंसनीय लक्ष्य है, व्यक्तिगत और समूह शुद्धता पर जोर – दर्द और आनंद से इनकार के माध्यम से अनुशासन – बुरे लोगों और विषाक्त विचारधाराओं को पारंपरिक मर्दाना आदर्शों के पालन की कमी को नैतिक विफलता के रूप में पेश करने की अनुमति देता है, एक उदाहरण के रूप में कि कैसे नारीवाद और प्रगतिशील पतन ने आधुनिक पुरुषों को भ्रष्ट कर दिया है।

> डेटिंग और रिश्ते: रेड पिल और 'मैनोस्फीयर' का उदय

सबसे ज़्यादा दिखाई देने वाले क्षेत्रों में से एक जहाँ दूर–दराज विचारधारा ने जड़ें जमा ली हैं, वह है डेटिंग और रिश्तों के बारे में ऑनलाइन चर्चाएँ। 'मैनोस्फीयर' में पाए जाने वाले रेड पिल समुदाय – पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा को समर्पित ऑनलाइन स्थानों का एक नेटवर्क – लड़कों और पुरुषों के लिए महिलाओं को कैसे हेरफेर करना है, ज़्यादा से ज़्यादा महिलाओं के साथ कैसे सेक्स करना है और एक मजबूत, सेक्सी, अल्फा पुरुष की भूमिका कैसे निभानी है, जिसका महिलाएँ विरोध नहीं कर सकती हैं, इस बारे में सलाह पाने के लिए सबसे आसानी से सुलभ स्थान हैं। ये फोरम, वेबसाइट, ऐप और प्लेटफॉर्म नारीवाद और महिला सशक्तिकरण को पुरुषों के लिए सीधे खतरे के रूप में देखते हैं। इन समुदायों के भीतर, पारंपरिक लिंग भूमिकाओं को मजबूत किया जाता है, जिसमें महिलाओं को अक्सर चालाक, अतिविवाही और धोखेबाज के रूप में दर्शाया जाता है। जो पुरुष इन मान्यताओं को मानते हैं, उन्हें रिश्तों पर हावी होने और प्रगतिशील लैंगिक समानता के किसी भी रूप को अस्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। हालाँकि ये विचार डेटिंग सलाह के रूप में शुरू हो सकते हैं, लेकिन वे अक्सर व्यापक प्रतिक्रियावादी राजनीति के प्रवेश द्वार के रूप में काम करते हैं।

मैनोस्फीयर के भीतर एक और विषैला उपसमूह 'मिसोजिनिस्टिक इनसेल' (अनैच्छिक ब्रह्मचारी) समुदाय है। मिसोजिनिस्टिक इनसेल का मानना है कि दमनकारी, नारीवादी सामाजिक व्यवस्था – जिसमें महिलाएं विशेष रूप से आकर्षक और प्रभावशाली पुरुषों को चुनती हैं – ने उन्हें रोमांटिक और यौन रूप से निराश कर दिया है। कई इनसेल अपने व्यक्तिगत संघर्षों के लिए नारीवाद, बहुसंस्कृतिवाद और अन्य कथित सामाजिक परिवर्तनों को दोषी ठहराते हैं, जिससे आक्रोश बढ़ता है जो हिंसा का कारण बन सकता है। इनसेल समाज के प्रति एक भाग्यवादी, जैविक रूप से नियतिवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं, जहाँ किसी व्यक्ति की आनुवंशिकी और शारीरिक विशेषताएँ या तो उसे यौन, आर्थिक और सामाजिक रूप से सफलता की गारंटी देती हैं या फिर आपको दुख और असफलता के जीवन के लिए अभिशप्त करती हैं। सामूहिक गोलीबारी सहित इनसेल–संबंधी हिंसा में वृद्धि, इन विषैली विचारधाराओं के वास्तविक दुनिया के परिणामों को दर्शाती है।

> फैशन और फिटनेस: "लुक्समैक्सिंग" से लेकर चरमपंथ तक

ऑनलाइन स्थान, जो ऊपरी तौर पर लड़कों और पुरुषों को अच्छे कपड़े पहनने, सिक्स पैक एब्स पाने और बेहतर तरीके से खुद को संवारने के टिप्स देते हैं, उन पर ऐसे कथानक हावी हो रहे हैं जो पुरुषों की असुरक्षा और कथित पुरुषवादी पदानुक्रम के शीर्ष पर पहुंचने की इच्छा का फायदा उठाते हैं।

ष्लुक्समैक्सिंग' एक ऑनलाइन शब्द है जिसका उपयोग फैशन, लुक और फिटनेस के लिए समर्पित कुछ ऑनलाइन आत्म–सुधार समुदायों में किया जाता है, जो छद्म विज्ञान, 'वैकल्पिक' उपचारों और विभिन्न प्रकार के समकालीन पुरुष वर्चस्ववादी ढोंग के माध्यम से किसी व्यक्ति के शारीरिक आकर्षण का विश्लेषण और अधिकतम करने की प्रक्रिया का वर्णन करता है। जबकि सतह पर यह आत्म–सुधार का एक हानिरहित रूप प्रतीत हो सकता है, कई लुकमैक्सिंग समुदाय मर्दानगी, आनुवंशिकी और सामाजिक पदानुक्रम के बारे में हानिकारक विचारों को मजबूत करते हैं। ये चर्चाएँ अक्सर यूजेनिसिस्ट मान्यताओं से जुड़ती हैं, इस विचार को बढ़ावा देती हैं कि केवल कुछ शारीरिक लक्षण (पढ़ें : श्वेत, एंग्लो–सैक्सन) ही वांछनीय हैं, और आनुवंशिक नियतिवाद एक दुर्गम वास्तविकता है।

फिटनेस संस्कृति भी दक्षिणपंथी कट्टरपंथ के लिए एक प्रवेश बिंदु बन गई है। कई पुरुष वर्चस्ववादी प्रभावशाली लोग फिटनेस और पुरुषों की शारीरिक रूप से अपने शरीर को बेहतर बनाने की इच्छा का उपयोग वर्चस्ववादी मर्दाना आदर्शों की वकालत करने के तरीके के रूप में करते हैं। ताकत, अनुशासन और प्रभुत्व की चर्चाएँ कभी–कभी व्यक्तिगत नैतिक पतन और फिर व्यापक सामाजिक पतन के विरोध में की जाती हैं, जिससे वैचारिक विभाजन और भी गहरा होता है। कुछ ऑनलाइन फिटनेस स्पेस में, एक पतला, मजबूत शारीरिक रूप बनाए रखने में विफलता को नैतिक विफलता, अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करने में असमर्थता और इसके बजाय आत्म–नियंत्रण की कमी के रूप में देखा जाता है।

फिटनेस में दक्षिणपंथियों की बढ़ती दिलचस्पी ने 'एक्टिव क्लब' के उद्भव को भी जन्म दिया है, जो ऐसे समूह हैं जो मार्शल आर्ट प्रशिक्षण को चरमपंथी विचारधाराओं के साथ मिलाते हैं। ये क्लब आत्मरक्षा, आत्म–सुधार और सशक्तिकरण की आड़ में पुरुषों को आकर्षित करते हैं, लेकिन अक्सर राजनीतिक हिंसा के लिए प्रशिक्षण मैदान के रूप में काम करते हैं। फिटनेस और दक्षिणपंथी उग्रवाद के बीच यह संबंध इस बात को रेखांकित करता है कि कैसे प्रतीत होता है कि हानिरहित ऑनलाइन समुदाय वास्तविक दुनिया में कट्टरपंथ को जन्म दे सकते हैं।

> खेल और गेमिंग: पुरुष वर्चस्व के सामान्यीकरण के नए क्षेत्र

पारंपरिक आत्म–सुधार स्थानों से परे, पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा ने वीडियोगेम और खेल मंचों में घुसपैठ की है, जो ऑनलाइन पुरुषों और लड़कों के लिए प्रमुख सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में काम करते हैं। नतीजतन, आत्म–अनुकूलन कथाएँ भी खेल और गेमिंग की चर्चाओं में शामिल हो गई हैं।

गेमिंग स्वाभाविक रूप से उन लोगों के ऑनलाइन समुदायों को बढ़ावा देता है जो या तो वीडियोगेम खेलते हैं या उस गेम को बनाने वाली कंपनी का अनुसरण करते हैं। रुगेमरगेट 2014 का एक विवाद और ऑनलाइन उत्पीड़न अभियान था जो जाहिर तौर पर वीडियो गेम पत्रकारिता में नैतिकता पर केंद्रित था, लेकिन गेमिंग समुदायों के भीतर महिला विरोधी और प्रगति विरोधी भावनाओं से काफी हद तक प्रेरित था। इसमें गेमिंग उद्योग में महिलाओं के खिलाफ समन्वित उत्पीड़न, डॉक्सिंग और धमकियाँ शामिल थीं, विशेष रूप से डेवलपर्स, आलोचकों और पत्रकारों को लक्षित करके जो अधिक विविधता और समावेशिता की वकालत करते थे। इस घटना ने वीडियोगेम की मजबूत इन–ग्रुप पहचान बनाने की क्षमता और वीडियोगेम समुदायों के कट्टरपंथ के प्रति संवेदनशील होने की क्षमता को प्रदर्शित किया। कई गेमिंग फोरम एक 'राजनीतिक रूप से गलत' संस्कृति को बढ़ावा देते हैं, जहाँ नस्लवादी, लिंगवादी और समलैंगिकता विरोधी चुटकुले आम हैं, जो मुक्त भाषण की आड़ में

>>

बहिष्कारवादी विश्वदृष्टि को मजबूत करते हैं। जबकि #गेमरगेट अब ऑनलाइन एक प्रेरक शक्ति के रूप में काम नहीं करता है, रुगेमरगेट की विरासत को इस रूप में महसूस किया जा सकता है कि गेमर्स के कुछ समूह उन खेलों, फिल्मों और टेलीविजन शो पर प्रतिक्रिया देते हैं जिनमें विविध कास्टिंग या केंद्रीय कहानियां और ऐसे चरित्र होते हैं जिन्हें 'जागृत' या प्रगतिशील माना जाता है।

खेल प्रभावित करने वाले लोग YouTube और पॉडकास्ट जैसे प्लेटफॉर्म का उपयोग उन एथलीटों के बारे में प्रतिक्रियात्मक कथनों को आगे बढ़ाने के लिए करते हैं जो सक्रियता में संलग्न हैं, और रूढ़िवादी राजनीतिक टिप्पणियों को खेल कवरेज के साथ मिलाते हैं, अक्सर एथलेटिक्स में प्रगतिशील आंदोलनों की आलोचना करते हैं, जैसे कि नस्लीय न्याय विरोध या खेलों में लैंगिक समावेशिता। ऐसा ही एक उदाहरण है बारस्टूल स्पोर्ट्स, एक लोकप्रिय खेल मीडिया ब्रांड, जिसने पुरुष वर्चस्ववादी विचारों को मुख्यधारा में लाने में भूमिका निभाई है। जबकि यह खुद को एक हल्के–फुल्के, ब्रो–कल्चर मीडिया आउटलेट के रूप में प्रस्तुत करता है, इसकी सामग्री अक्सर महिलाओं के प्रति घृणा को बढ़ावा देती है, प्रगतिशील आंदोलनों को खारिज करती है, और अति–पुरुषत्व की संस्कृति को प्रोत्साहित करती है। बारस्टूल स्पोर्ट्स 'गेस दैट ऐस', 'गेस दैट रैक' और 'ट्वर्क वेडनसडे' नामक आवर्ती सुविधाएँ चलाता है। और 2010 में, बारस्टूल स्पोर्ट्स के निर्माता डेव पोर्टनॉय ने लिखा, 'मैं कभी भी बलात्कार का समर्थन नहीं करता, लेकिन अगर आप साइज 6 हैं और स्किनी जींस पहनते हैं तो आप बलात्कार के लायक हैं, है न।' इन विचारों को विनोदी, तीखे और विद्रोही रूप में प्रस्तुत करके, यह उन्हें उन युवा पुरुषों के लिए अधिक आकर्षक बनाता है, जो केवल खेल कवरेज से जुड़ना चाहते हैं, लेकिन यह नहीं जानते कि वे पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा से भी जुड़ रहे हैं।

> निष्कर्ष

पुरुषों और लड़कों के लिए डिजिटल स्थान तेजी से पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा द्वारा आकार ले रहे हैं, जो कभी सहायक समुदायों को कट्टरपंथ के केंद्रों में बदल रहे हैं। आत्म–सुधार की आड़ में – चाहे डेटिंग सलाह, फिटनेस, फैशन, खेल या गेमिंग के माध्यम से – ये स्थान प्रतिक्रियावादी मान्यताओं को सामान्य बनाते हैं जो पारंपरिक लिंग पदानुक्रम और बहिष्कार के आदर्शों को मजबूत करते हैं। इन स्थानों में दूर–दराज की विचारधारा की घुसपैठ पुरुषों और लड़कों के लिए स्वस्थ, अधिक समावेशी समुदायों की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

इस प्रवृत्ति का प्रतिकार करने के लिए, हमें पूछना चाहिए: लड़के और पुरुष पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा द्वारा समर्थित सामग्री का उपभोग करने के लिए मजबूर किए बिना समुदाय का निर्माण करने के लिए कहाँ जा सकते हैं? इसका उत्तर नए, सकारात्मक स्थानों को बनाने में निहित है जो स्वस्थ मर्दानगी, भावनात्मक बुद्धिमत्ता और वास्तविक समर्थन को बढ़ावा देते हैं। पहचान, भेद्यता और सम्मान के बारे में खुली बातचीत को प्रोत्साहित करने से युवा पुरुषों को विषाक्त प्रभावों से दूर रखने में मदद मिल सकती है। अंततः, समाज को समावेशी वातावरण को बढ़ावा देने में निवेश करना चाहिए जहाँ पुरुष और लड़के हानिकारक वैचारिक ढाँचों में फंसने के बिना जुड़ सकें और विकसित हो सकें। लड़के और पुरुष ऐसे समुदायों और ऑनलाइन स्थानों की तलाश करते हैं जो सलाह, मार्गदर्शन और समुदाय प्रदान करते हैं, कोई कारण नहीं है कि लड़कों और पुरुषों के हितों के लिए समर्पित ऑनलाइन स्थानों को स्त्री–द्वेष और अतिवाद के लिए समर्पित स्थान बनने की आवश्यकता है। ■

सभी पत्राचार पाशा दश्तगर्द को <dashtgard@american.edu> पर प्रेषित करें।

> फैशन का धुर–दक्षिणपंथ द्वारा सैन्यीकरण

एंड्रिया ग्रिपो, द एकेडमी ऑफ फाइन आर्ट्स, वियना, ऑस्ट्रिया द्वारा

एकरूपता से विखंडन की ओरः अति दक्षिणपंथ का सौंदर्यबोधिक झुकाव। लेखक द्वारा ChatGPT के सहयोग से निर्मित चित्र।

धुर–दक्षिणपंथ की सामूहिक क्रियाशीलता में एक गहन रूपांतरण देखा गया है। प्रत्यक्ष राजनीतिक टकराव के साथ–साथ, प्रतीकात्मक, सौंदर्यपरक और प्रदर्शनात्मक विषय–वस्तु पर केंद्रित सांस्कृतिक रणनीतियों का भी काफी विस्तार हुआ है। धुर–दक्षिणपंथी कर्त्ता अब सामूहिक कल्पनाओं को पुनः आकार देने, सांस्कृतिक पहचान को पुनर्परिभाषित करने, और जीवनशैली की प्रथाओं के माध्यम से दैनिक जीवन को प्रभावित करने का प्रयास कर रहे हैं।

> धुर–दक्षिणपंथ के भीतर फैशन की बदलती भूमिका

सांस्कृतिक आधिपत्य की इस लड़ाई में फैशन, धुर–दक्षिणपंथ के सबसे प्रभावी औजारों में से एक बनकर उभरा है, जो एक ऐसा माध्यम प्रदान करता है जिसके जरिए बहिष्कारवादी आख्यानों, राष्ट्रवादी मिथकों और सत्तावादी आदर्शों को प्रसारित और सामान्य बनाया जा सकता है। अति दक्षिणपंथी सांस्कृतिक परिवर्तन के केंद्र में, फैशन को रणनीतिक रूप से हथियार बनाया गया है।

नाजी स्किन–सबकल्चर में, फैशन समूह में प्रवेश का द्वार और पहचान निर्माण का एक केंद्रीय उपकरण था। "ब्रिकोलाज" की प्रक्रिया के माध्यम से, नाजी स्किनहेड्स ने ब्रिटिश श्रमिक वर्ग की शैली को जमैकन और मॉड प्रभावों के साथ मिलाकर एक विशिष्ट सौंदर्यशास्त्र निर्मित किया – जिसमें मुंडे हुए सिर, चमड़े की जैकेट और कॉम्बैट बूट्स शामिल थे। यद्यपि ऐतिहासिक रूप से शक्तिशाली, आज स्किनहेड सौंदर्यशास्त्र, दक्षिणपंथ की व्यापक और अधिक खंडित दृश्य संस्कृति के भीतर एक एक गौण पहलू है।

1990 के दशक के उत्तरार्ध से, धुर–दक्षिणपंथी फैशन में विविधता आ गई है – उसने खुले प्रतीकों को त्याग कर छलावरण और अस्पष्टता को अपनाया है। अब आंदोलन में प्रवेश के लिए सौंदर्यात्मक एकरूपता की आवश्यकता नहीं रही, इसके बजाय, फैशन अब भिन्नता और अनुकूलनशीलता का एक मंच बन गया है। जैसा कि मिलर–इड्रिस देखती हैं: "आज का धुर–दक्षिणपंथी युवा अपनी व्यक्तिगत पहचान व्यक्त कर सकता है और फिर भी दक्षिणपंथी बना रह सकता है।"

धुर–दक्षिणपंथ ने 'फैशन की भाषा' को अपनाया है – जो न केवल पहचान और अपनेपन को व्यक्त करने का एक साधन है, बल्कि दृश्यता प्राप्त करने, नए अनुयायियों को आकर्षित करने और प्रतीकों, शैली और रोजमर्रा के उपभोक्ता वस्तुओं के माध्यम से अपने विश्वदृष्टिकोण को सामान्य बनाने का भी साधन है। सौंदर्यशास्त्रीय रणनीतियाँ धुर–दक्षिणपंथी पीढ़ियों में विकसित हुई हैं, जो विचारधारा और सांस्कृतिक मूल्यों को व्यक्त करने के लिए दृश्य भाषा, शैली और प्रतीकवाद के उपयोग में महत्वपूर्ण नवाचारों को चिह्नित करती हैं। ये सौंदर्यपरक बदलाव मुख्यधारा के स्थानों में सहज प्रवेश को संभव बनाते हैं, तथा सामाजिक रूप से स्वीकार्य मानी जाने वाली सीमाओं को सूक्ष्मता से आगे बढ़ाते हैं।

> जेनरेशन X (1965–1980): सौंदर्य विद्रोह और शैलीगत मिश्रण

1990 के दशक के अंत में, धुर–दक्षिणपंथ ने एक महत्वपूर्ण सौंदर्यशास्त्रीय मोड़ लिया और उसने नियो–नाजी स्किनहेड उपसंस्कृति की कठोर एकरूपता से हटकर एक अधिक विविध, संकरित और विद्रोही सौंदर्य को अपनाया। इस समय के दौरान उभरने वाला एक प्रमुख दृश्य आदर्श वाइकिंग योद्धा, रूण, वल्लाह के संदर्भ था, तथा थोर जैसे पौराणिक पात्र परिधानों पर बार–बार दिखाई देने वाले रूपांकन बन गए, जो शक्ति के प्रतीक तथा जातीय विरासत की सांकेतिक अभिव्यक्ति दोनों के रूप में कार्य करते थे।

>>

ये मिथकीय संदर्भ पारंपरिक धुर–दक्षिणपंथी दक्षिणपंथी प्रतीकों और प्रति–सांस्कृतिक दुनिया से लिए गए तत्वों जैसे बाइकर, रॉकर और गुंडे दृश्यों के साथ घुलने–मिलने लगे। स्ट्रीटवियर एक प्रमुख संदर्भ के रूप में उभरा, जिसने एक दृश्य पहचान बनाई जो वैचारिक संकेत के साथ मर्दाना विद्रोह को संतुलित करती थी। प्रतीक कोडित और अस्पष्ट हो गए, जिससे पहनने वालों को तत्काल सार्वजनिक जांच से बचते हुए अपनी संबद्धता व्यक्त करने की सुविधा मिल गई।

इस सौंदर्यात्मक रणनीति का निर्णायक मोड़ थोर स्टीनर के उदय के साथ आया, जो एक जर्मन ब्रांड था जिसने नॉर्डिक–जर्मनिक पौराणिक कथाओं को आउटडोर और तकनीकी फैशन के साथ मिश्रित किया। इसके लोगो, संख्याएँ (जैसे "44"), और रूनिक प्रतीक अर्द्ध–सांकेतिक क्षेत्र के रूप में कार्य करते थे – जिन्हें धुर–दक्षिणपंथी हलकों में समझा जा सकता था, पर सार्वजनिक रूप से नकारा जा सकता था। यहाँ तक कि ब्रांड के नाम में भी नॉर्स के वज्र देवता 'थॉर' को 'स्टाइनार' के साथ जोड़ा गया था, जो वाफेन–एसएस के जनरल फेलिक्स स्टेनर की ओर इशारा करता था। रणनीति स्पष्ट थीः कट्टरपंथी प्रतीकवाद को ऐसे डिजाइन में समाहित करना जो मुख्यधारा के लिए उपयुक्त प्रतीत हो।

यह रणनीति जल्द ही मानक बन गई। एरिक एंड संस और असगर आर्यन जैसे ब्रांड इसके अनुकरण में सामने आए – जिन्होंने "योद्धा" नैतिकता को बढ़ावा दिया, जिसमें विरासत, शक्ति और प्रतिरोध के मूल्य शामिल थे – जो वस्तुतः श्वेत श्रेष्ठता के संकेतक थे, परंतु एक तटस्थ दृश्यशैली में प्रस्तुत किए गए थे।

> मिलेनियल्स (1981–1996): शास्त्रीय प्राचीनता और सांस्कृतिक छलावरण

डिजिटल संस्कृति के आगमन ने धुर–दक्षिणपंथी फैशन को फिर से बदल दिया। अब आक्रामक और सैन्य शैली पीछे छूट गई, और उनकी जगह ली अधिक सुगम, विपणन योग्य दृश्यता ने – जैसे कि कॅजुअल स्पोर्टसवियर, "नॉर्मकोर", और हिप्स्टर स्टाइल। बॉम्बर जैकेट्स और कॉम्बैट बूट्स की जगह पोलो शर्ट्स और पेस्टल रंगों ने ले ली।

प्रतीकात्मक रूप से, वाइकिंग विषय फीके पड़ गए। अब ब्रांडों ने प्राचीन यूनानी–रोमी सभ्यता का सहारा लियाः स्पार्टा, रोम, फालैन्क्स, और सैन्य टुकड़ियाँ। धुर–दक्षिणपंथ ने स्वयं को बहुसंस्कृतिवाद द्वारा घेरे गए एकीकृत ग्रीको–रोमन सभ्यता के उत्तराधिकारी के रूप में पुनः परिकल्पित किया। यहाँ, दृश्य संस्कृति ने यूरोप को एक सभ्यतागत ब्लॉक के रूप में चित्रित किया, जो विशिष्ट और सांस्कृतिक रूप से शुद्ध था। यह बदलाव जातीय बहुलवाद के साथ संरेखित है – जो नस्लीय पदानुक्रम पर सांस्कृतिक पृथक्करण पर जोर देता है। फालेंक्स यूरोपा, पिवर्ट और पेरिपेटी जैसे ब्रांडों ने ग्रीक और लैटिन नारों और वीरतापूर्ण संदर्भों को नॉर्मकोर परिधान में शामिल किया।

लचीलेपन और सांस्कृतिक उत्पत्ति के विषयों को स्वच्छ, सुगम सौंदर्यबोध के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इस रणनीति ने इन ब्रांडों को कट्टरपंथी और मुख्यधारा, दोनों ही जगहों पर प्रसारित होने में सक्षम बनाया। कपड़े एक ट्रोजन हॉर्स बन गएः वैचारिक रूप से आवेशित, लेकिन दृश्य रूप से ज्यादा तटस्थ।

> जनरेशन Z (1997–2012): सौंदर्यपरक अति–सामान्यीकरण और दृश्यात्मक प्रदर्शनात्मकता

जनरेशन Z के साथ, धुर–दक्षिणपंथी फैशन ने व्यंग्य, कोमलता, और अस्पष्टता को अपना लिया है। यह पीढ़ी जो डिजिटल दुनिया में पली–बढ़ी है, उसने मीम संस्कृति, पॉप सौंदर्यशास्त्र, और तोड़फोड़ को एकजुट कर लिया है। वैचारिक संदेशों को हल्के या विनोदी डिजाइनों में शामिल किया जाता है – जो अक्सर LGBTQ+ छवि या वामपंथी नारे जैसे विरोधी प्रतीकों का संदर्भ लेते हैं, और फिर उन्हें केवल उपहास या वैचारिक उलटफेर के लिए पुनः उपयोग किया जाता है।

इसका एक प्रमुख उदाहरण टिम केल्नर हैं, जो एक जर्मन धुर–दक्षिणपंथी यूट्यूबर हैं, जिनके इंद्रधनुषी रंग के डिजाइन, यूनिकॉर्न और व्यंग्यात्मक नारे समावेशिता और लैंगिक विविधता का मजाक उड़ाते हैं। उनके उत्पादों में चमकदार, समावेशी दृश्यों को नफरत भरी सामग्री के साथ मिलाया जाता है। यह सोची–समझी दृश्य असंगति, जिसमें कट्टरपंथी सामग्री को पॉप पैकेजिंग में लपेटा जाता है, जेनरेशन जेड के अति–दक्षिणपंथी फैशन की पहचान बन गई है।

> निष्कर्ष

एकरूपता से मिश्रण तक, मिथकवाद से शास्त्रीय सभ्यता तक, और अंततः गूढ़ प्रतीकों से अतिसामान्य व्यंग्य तक – धुर–दक्षिणपंथी फैशन अब एक परिष्कृत सांस्कृतिक संप्रेषण प्रणाली में परिवर्तित हो चुका है। जो कुछ एक समय में उप–सांस्कृतिक पहचान था, वह अब एक पूर्णतः चालित जीवनशैली बाजार बन गया है – जो दैनिक पहनावे के जरिए उग्र विचारधाराओं को सामान्य बना सकता है। एकरूपता से लेकर संकरण तक, पौराणिक कथाओं से लेकर शास्त्रीय सभ्यता तक, और अंततः गूढ़ प्रतीकों से लेकर अति–सामान्यीकृत विडंबना तक, धुर– दक्षिणपंथी फैशन सांस्कृतिक संचार की एक परिष्कृत प्रणाली में विकसित हो गया है।

मुख्यधारा के फैशन में अति–दक्षिणपंथी सौंदर्यशास्त्र को एकीकृत करने का प्रयास केवल एक ब्रांडिंग की रणनीति नहीं है, यह सामान्यीकरण के उद्देश्य से एक जानबूझकर राजनीतिक रणनीति है। अपनी विचारधाराओं को रोजमर्रा की उपभोक्ता संस्कृति में समाहित करके, अति–दक्षिणपंथी कर्त्ता स्वीकार्य विमर्श की सीमाओं को बदल रहे हैं। "नॉर्मकोर" और मिनिमलिस्ट शैलियों का उपयोग उन्हें अहिंसक और सामान्य दिखने में मदद करता है, जिससे उनके दृष्टिकोण एक व्यापक, वैध राजनीतिक परिदृश्य का हिस्सा लगते हैं।

इसका परिणाम सौंदर्य युद्ध का एक सूक्ष्म, कपटी रूप है – जो अतिवाद को कोमलता, विडंबना और मुख्यधारा की अपील में लपेट देता है, जिससे प्रतिरोध अधिक कठिन हो जाता है और घुसपैठ अधिक प्रभावी हो जाती है। परिणामस्वरूप, सौंदर्यशास्त्र को हथियार बना दिया गया है, जबकि अतिवाद को सामान्य बना दिया गया है। ■

सभी पत्राचार एंड्रिया ग्रिपो को <a.grippo@akbild.ac.at> पर प्रेषित करें।

> कैसे धुर दक्षिणपंथ नागरिक समाज पर अतिक्रमण कर रहा है।

सुमरिन कालिया, फ्री यूनिवर्सिटी बर्लिन, जर्मनी द्वारा

30 मार्च, 2022 को कराची में टीएलपी की एक रैली में लोग एकत्रित हुए। लेखक द्वारा फोटो।

> >

यूरोप और उसके पार अब धुर–दक्षिणपंथ कोई हाशिए की ताकत नहीं रह गया है। धुर–दक्षिणपंथी पार्टियों ने महत्वपूर्ण चुनावी सफलताएं प्राप्त की हैं और अल्पसंख्यकों पर मुकदमा चलाने, मानवाधिकार संगठनों पर कार्रवाई करने, और हाशिये पर स्थित समुदायों के विरुद्ध स्वयं–न्यायप्रिय हिंसा को बढ़ावा देने में राज्य तंत्र का उपयोग किया है।

प्रश्न यह उठता है कि धुर–दक्षिणपंथी पार्टियां लोकप्रिय समर्थन कैसे और क्यों प्राप्त करने में सफल रही हैं? इन प्रश्नों पर अनेक विद्वानों द्वारा गहन अध्ययन किया गया है। कुछ का तर्क है कि वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के कारण आए तीव्र परिवर्तनों ने आर्थिक और सांस्कृतिक असंतोष को जन्म दिया, जिससे धुर–दक्षिणपंथी पार्टियों के उदय के लिए उपजाऊ परिस्थितियाँ बनीं। अन्य का मानना है कि मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियों की उदासीनता, वर्ग–आधारित मतदान में गिरावट, और राजनीति के बढ़ते मीडिया–करण ने धुर–दक्षिणपंथ की बहिष्कारी विचारधाराओं को सामाजिक स्वीकृति प्रदान की।

> पाकिस्तान का मामला

ऐसी परिस्थितियाँ कुछ देशों में पहले से ही मौजूद रही हैं, जैसे कि पाकिस्तान। हालांकि, वहाँ की सैन्य व्यवस्था की अभिभावकीय निगरानी और चुनावी प्रतिस्पर्धा की संस्थागत कमजोरी ने धुर–दक्षिणपंथी पार्टियों के स्पष्ट रूप से उभरने को सीमित कर दिया है। इसके बावजूद, उनके विचारों ने समाज में उल्लेखनीय लोकप्रियता प्राप्त की है, जिससे पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के साथ–साथ नारीवादी और उदारवादी समूहों के प्रति शत्रुता में वृद्धि हुई है।

इस लेख में मेरा तर्क है कि धुर–दक्षिणपंथी विचारधाराओं की स्वीकृति और सामान्यीकरण को समझने के लिए हमें नागरिक समाज पर ध्यान केंद्रित करना होगा – जिसे सामाजिक और राजनीतिक सहभागिता का क्षेत्र माना जाता है। धुर–दक्षिणपंथी पार्टियाँ आंदोलन–आधारित रणनीतियों का उपयोग करती हैं ताकि मौजूदा असंतोष का लाभ उठाया जा सके, अपने विचारों के प्रभाव का विस्तार किया जा सके, और राजनीतिक व्यवहार, दृष्टिकोण एवं संस्कृति को रूपांतरित किया जा सके।

अपने तर्क को स्पष्ट करने के लिए मैं पाकिस्तान की एक धुर–दक्षिणपंथी पार्टी के मामले का अध्ययन प्रस्तुत कर रहीं हूँ। पाकिस्तान इस संदर्भ में एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत करता है क्योंकि वहाँ की राजनीतिक संस्थाएँ लोकतांत्रिक मानदंडों को लागू करने में कमजोर हैं, और सेना राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को चुनिंदा संरक्षण और दमन के माध्यम से नियंत्रित करती है। परिणामस्वरूप, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा नागरिक समाज में फैल जाती है, जहाँ दूर–दक्षिणपंथी पार्टियाँ न केवल पारंपरिक राजनीतिक विचार–निर्माण में संलग्न होती हैं, बल्कि संघर्षात्मक लामबंदी में भी भाग लेती हैं।

आगे के हिस्से में, मैंने यह दर्शाया है कि किस प्रकार यह पार्टी आंदोलन–सदृश रणनीतियों का प्रयोग करके अपनी बहिष्कारी विचारध ारा की स्वीकार्यता बढ़ाती है। विशेष रूप से, मैं तीन तकनीकों का उल्लेख करूँगी जिनका उपयोग पार्टी के नेता, सदस्य और कार्यकर्ता अपने विचारों और मानदंडों को फैलाने के लिए करते हैं।

> तेहरीक–ए–लब्बैक पाकिस्तान (TLP)

तेहरीक–ए–लब्बैक पाकिस्तान (TLP) स्वयं को एक धार्मिक राजनीतिक पार्टी के रूप में प्रस्तुत करती है, जिसका एजेंडा पाकिस्तान के ईशनिंदा विरोधी कानूनों की रक्षा करना है – ये कानून विशेष रूप से इस्लाम, उसके पवित्र व्यक्तित्वों और कुरान से संबंधित अपराधों को लक्षित करते हैं। यह पार्टी 2018 के आम चुनावों में पाकिस्तान की राजनीतिक पटल पर उभरी, जब उसने 262 उम्मीदवारों को चुनाव मैदान में उतारा और पांचवीं सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी। 2024 के चुनावों तक आते–आते, यह चौथे स्थान पर पहुंच गई और सभी पारंपरिक इस्लामी पार्टियों को पीछे छोड़ दिया। चुनावों से परे, TLP ने ईशनिंदा कानूनों में किसी भी प्रकार के सुधार पर बहस को पूरी तरह से दबा दिया है। इसने अहमदियों, नारीवादियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं पर अवैध हमलों और हत्याओं को वैध ठहराने की कोशिश की है।

पाकिस्तान नागरिक समाज में धुर–दक्षिणपंथी विचारों के सामान्यीकरण के अध्ययन के लिए एक आकर्षक उदाहरण प्रस्तुत करता है क्योंकि वहाँ की राजनीतिक प्रतिस्पर्धा केवल संस्थागत ढाँचे तक सीमित नहीं है, बल्कि वह नागरिक समाज के भीतर भी आकार लेती है। देश की राजनीतिक संस्थाएँ – जैसे न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका – लोकतांत्रिक मानदंडों को लागू करने में अक्षम हैं क्योंकि सैन्य प्रतिष्ठान न केवल इन संस्थाओं पर नियंत्रण रखता है बल्कि नागरिक स्वतंत्रताओं को भी सीमित करता है। देश में असमानता की उच्च दर और अभिजात्य वर्ग का वर्चस्व सामाजिक गतिशीलता को जकड़ता है, जबकि वामपंथी, धर्मनिरपेक्ष और नारीवादी समूहों द्वारा किसी भी प्रकार का सक्रिय प्रतिरोध सीमित रहता है। सेना ने ऐतिहासिक रूप से चुनिंदा संरक्षण अपनाया है, तथा नियंत्रण बनाए रखने के लिए इस्लामवादियों सहित विभिन्न राजनीतिक समूहों का समर्थन किया है। जहाँ पूर्ववर्ती सैन्य शासनों ने देवबंदी और सलाफी समूहों का समर्थन किया था, वहीं वर्तमान प्रतिष्ठान ने TLP के उदय को सुविधाजनक बनाया है, जिससे उसे अधिक राजनीतिक स्थान और वैधता प्राप्त हुई है।

> नागरिक समाज में पैठ बनाने की तकनीकें

यूरोप की अधिकांश धुर–दक्षिणपंथी पार्टियों की ही तरह, TLP भी चुनावी और आंदोलन–आधारित रणनीतियों का समन्वय करती है, जिससे वह औपचारिक राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और नागरिक समाजकृदोनों में सक्रिय रह सके। धुर–दक्षिणपंथी पार्टियाँ प्रायः नागरिक समाज के भीतर सामाजिक आंदोलनों के रूप में उभरती हैं, और फिर धीरे–धीरे औपचारिक राजनीतिक इकाइयों का रूप लेती हैं,जहाँ वे खुद को आंदोलनों या जनसमर्थित दलों के रूप में संगठित करती हैं। इनका स्वरूप हाइब्रिड होता है, जिसमें ये चुनावी और आंदोलनात्मक रणनीतियों को जोड़ती हैं। इस प्रक्रिया में राजनीतिक उद्यमी और कार्यकर्ता न केवल पारंपरिक राजनीतिक समर्थन निर्माण में निवेश करते हैं, बल्कि .विवादास्पद लामबंदी में भी सक्रिय भागीदारी निभाते हैं।

एक आंदोलनात्मक पार्टी के रूप में, TLP ने नागरिक समाज में अपने प्रभाव को बढ़ाने और वैधता प्राप्त करने के लिए जिन तीन तकनीकों का प्रयोग किया है, उन्हें मैं नीचे विस्तार से प्रस्तुत कर रहीं हूँ। इन तीनों तकनीकों को मैं "नागरिक समाज में अतिक्रमण की तकनीकें" कहती हूँ, जो पार्टी के विचारों और सामाजिक मानदंडों के प्रभाव को फैलाने का कार्य करती हैं। अतिक्रमण से मेरा तात्पर्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया से है जिसमें सभ्य और असभ्य समाज के बीच की सीमा को पार किया जाता है – इस प्रकार कि असभ्य, सभ्य समाज पर अतिक्रमण करता है।

> आख्यानों की पुनर्व्याख्या

TLP धार्मिक आख्यानों को पुनः परिभाषित करके उन्हें अपने राजनीतिक लक्ष्यों के अनुरूप ढाल देती है। उदाहरण के लिए, पैगंबर मुहम्मद की ताइफ यात्रा – जिसे पारंपरिक रूप से धैर्य और क्षमा की कथा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है – को TLP के

> >

करिश्माई नेता खादिम हुसैन रिजवी द्वारा घृणा और प्रतिशोध की भावना से जोड़ कर प्रस्तुत किया। इसी प्रकार, इल्म दीन की कहानी – जिसमें एक युवा मुस्लिम ने औपनिवेशिक भारत में एक हिंदू प्रकाशक की हत्या कर दी थी – को TLP कार्यकर्ताओं द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जैसे कि वह एक धार्मिक नायक हों और उनका कृत्य न्यायोचित हो। इन व्याख्याओं को प्रभावशाली भाषणों, संपादित सोशल मीडिया वीडियो, और ऐसी भाषिक रणनीतियों के माध्यम से और भी मजबूत किया जाता है, जो धार्मिक आस्था को राजनीतिक क्रिया से मिला देती हैं।

> नेटवर्क दलाली

TLP अपने प्रभाव क्षेत्र को विस्तारित करने के लिए जमीनी स्तर के कार्यकर्ताओं को सह–विकासक (ब्रोकर) के रूप में साथ लेकर विभिन्न सामाजिक–धार्मिक नेटवर्कों के बीच संपर्क स्थापित करती है। उदाहरण के लिए, 2018 के आम चुनावों के दौरान, TLP के कार्यकर्ताओं ने दावत–ए–इस्लामी (DI) और सुन्नी तहरीक जैसे संगठनों के साथ संबंध बनाए और व्हाट्सएप समूहों का उपयोग करते हुए पार्टी के प्रचार सामग्री का प्रसार किया। इसी तरह, उन्होंने अंजुमन–ए–तुलबा–ए–इस्लाम (ATI) जैसे छात्र संगठनों में अपने राजनीतिक संदेशों का प्रसार किया, जिसने फैजाबाद धरने के लिए समर्थन जुटाने में सहायता की। इन नेटवर्क दलालों ने पार्टी को उसके मूल संप्रदायिक आधार से बाहर निकलकर अन्य धार्मिक, शैक्षिक, और राजनीतिक क्षेत्रों तक पहुंचने में सक्षम बनाया।

> प्रतीकात्मक प्रदर्शन

TLP अपने बहिष्कारी विचारों को लोकप्रिय धार्मिक प्रतीकों और प्रथाओं में समाहित करके उनकी स्वीकृति और प्रभावशीलता को बढ़ाने का कार्य करती है। मस्जिदें – विशेष रूप से कराची की बहार–ए–शरीअत मस्जिद – ऐसे स्थल बन जाती हैं जहाँ नियमित धार्मिक समारोहों को राजनीतिक लामबंदी के मंच में बदल दिया जाता है। पैगंबर की स्तुति सुनाने जैसे अनुष्ठानों को टीएलपी के आख्यानों के प्रसार के लिए पुनःप्रयोजनित किया जाता है। चुनाव अभियानों के दौरान, पैगंबर की चप्पल (नालैन) को पार्टी का चुनाव चिन्ह बनाया गया, जबकि पैगंबर से प्रेम प्रकट करने के लिए अंगूठा चूमने की परंपरा को इस रूप में प्रस्तुत किया गया जैसे कि यह TLP को वोट देने की प्रतीकात्मक क्रिया हो।

पाकिस्तान में पूर्व–स्थित सामाजिक–सांस्कृतिक विभाजन, सैन्य संरक्षण, और प्रतिरोधी आंदोलनों की कमजोरी जैसे कारकों ने TLP के अतिक्रमण को सुविधाजनक बनाया है। इस पार्टी ने ऐतिहासिक इस्लामी आंदोलनों – विशेषकर 1950 और 1970 के दशकों के अहमदिया विरोधी अभियानों – को अपने पक्ष में पुनः व्याख्यायित किया है। इन ऐतिहासिक आख्यानों को TLP ने "नामूस–ए–रिसालत" (पैगंबर की पवित्रता) के इर्द–गिर्द पुनः गढ़ा है, जिससे उसे वैधता और वैचारिक स्थायित्व प्राप्त हुआ है। TLP को पाकिस्तान की "हाइब्रिड राजनीतिक प्रणाली" से भी लाभ प्राप्त हुआ है – एक ऐसी प्रणाली जिसमें सेना धार्मिक पार्टियों को चुनिंदा रूप से सहन करती है और संरक्षण देती है, जबकि अन्य (विशेषकर वामपंथी और धर्मनिरपेक्ष समूहों) को दमन का सामना करना पड़ता है। इसी चयनात्मक संरक्षण की बदौलत TLP ने बरेलवी संप्रदाय की सीमाओं से बाहर निकलकर व्यापक प्रभाव क्षेत्र विकसित कर लिया है। इस बीच, धार्मिक अल्पसंख्यक, वामपंथी दल, और धर्मनिरपेक्ष नारीवादी जैसे नागरिक समाज के अन्य घटक – संरचनात्मक दमन और संरक्षणवादी राजनीति के कारण – TLP के प्रभाव के बढ़ते विस्तार का प्रतिकार करने में असमर्थ रहे हैं। नतीजतन, TLP के विचार और रणनीतियाँ न केवल धार्मिक पहचान, बल्कि सार्वजनिक जीवन और राजनीतिक सहभागिता को भी आकार देने लगी हैं।

जहाँ पाकिस्तान की कमजोर नागरिक स्वतंत्रता, धार्मिक राष्ट्रवाद और राजनीतिक ग्राहकवाद नागरिक समाज पर अतिक्रमण के लिए उपजाऊ स्थितियां पैदा करते हैं, यह पता लगाना उचित होगा कि क्या और कैसे मजबूत राजनीतिक संस्थाओं, नागरिक अधिकारों के संरक्षण और संस्थागत राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में नागरिक समाज पर अतिक्रमण किया जाता है। अंततः, यह केवल राजनीतिक संस्थाएं ही नहीं, बल्कि एक मजबूत नागरिक क्षेत्र भी है जो नागरिक समाज में अति–दक्षिणपंथी अतिक्रमण और विश्व भर में उनके विचारों के सामान्यीकरण का विरोध कर सकता है। ■

सभी पत्राचार सुमरिन कालिया को <sumrin.kalia@fu-berlin.de> पर प्रेषित करें।

> लोकलुभावन शासन का नागरिक समाज
की वकालत पर प्रभाव

रोबर्टो स्कारामुज़्ज़िनो और **सेसिलिया सैंटिली**, लुंड विश्वविद्यालय, स्वीडन द्वारा

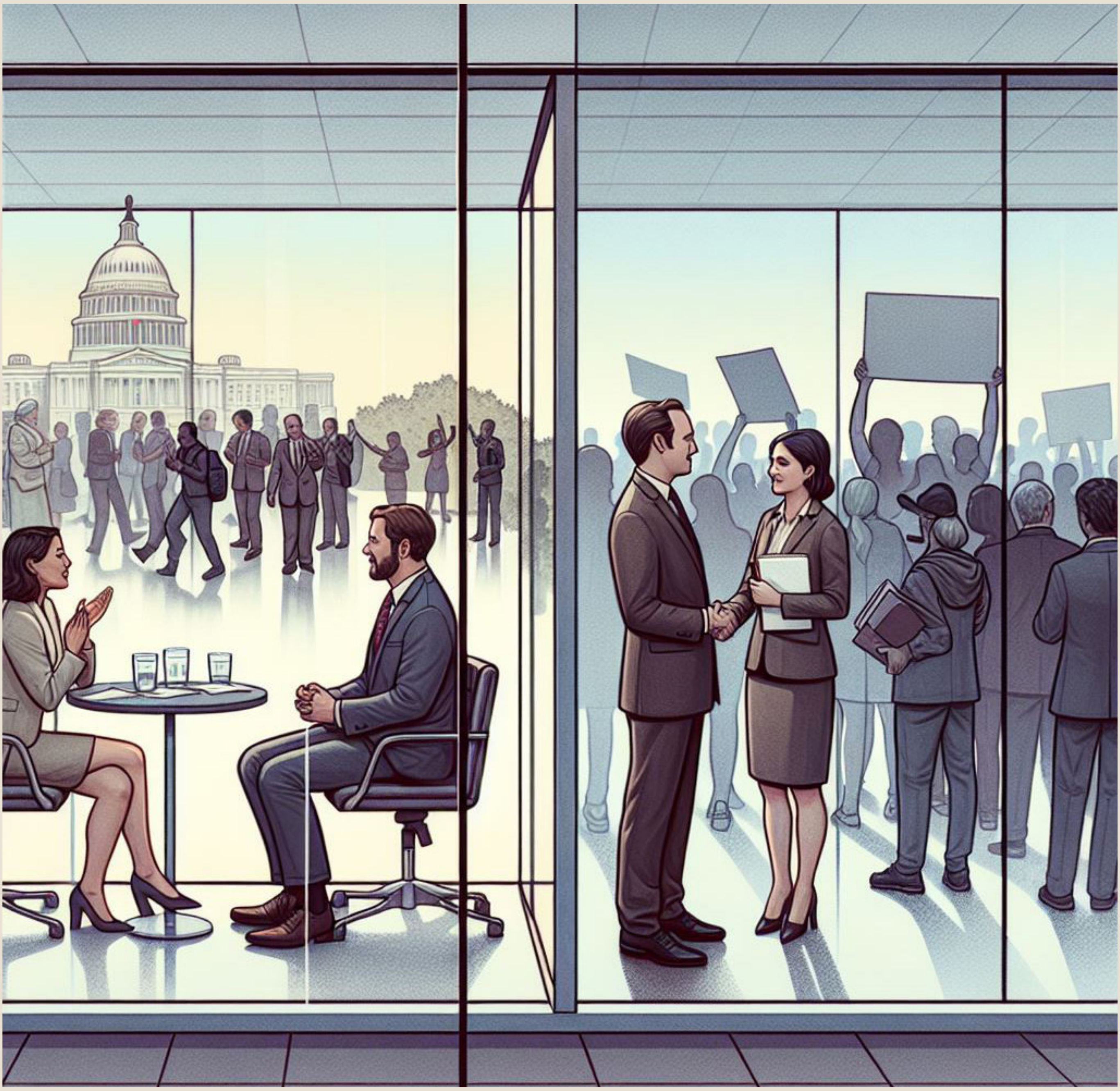

लॉबिंग और वकालत के बीच। लेखक द्वारा माइक्रोसॉफ्ट कोपायलट के साथ निर्मित चित्र।

उदार लोकतंत्रों में दक्षिणपंथी लोकलुभावन दलों के सत्ता में आने से लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति और भविष्य को लेकर गहन बहस छिड़ गई हैं। स्वीडन इसका एक स्पष्ट उदाहरण है – जहाँ स्थिर लोकतांत्रिक संस्थाएँ, एक जीवंत नागरिक समाज, और सार्वजनिक संस्थानों में उच्च स्तर का विश्वास मौजूद

>>

है – फिर भी वहाँ एक दक्षिणपंथी लोकलुभावन पार्टी, स्वीडन डेमोक्रेट्स, ने प्रत्येक चुनाव में अपनी चुनावी सफलता को बढ़ाया है। 2022 के चुनावों के पश्चात, स्वीडन डेमोक्रेट्स को राज्य नीतियों तक प्रत्यक्ष पहुँच प्राप्त हो गई – जब उन्होंने एक उदार–रूढ़िवादी दल द्वारा संचालित केंद्र–दक्षिणपंथी सरकार को समर्थन दिया।

लुंड विश्वविद्यालय के सामाजिक कार्य विद्यालय में नागरिक समाज पर गहन शोध अनुभव और स्वीडिश अनुसंधान परिषद द्वारा वित्तपोषण के आधार पर, हमने 2024 में एक अनुसंधान परियोजना आरंभ की जिसका शीर्षक था: "नागरिक समाज और लोकलुभावनवाद: लोकलुभावन दलों के सत्ता में आने से राज्यदृनागरिक समाज संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ता है?" यह परियोजना एक तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाती है, जिसमें दो देशों – स्वीडन और इटली – पर ध्यान केंद्रित किया गया। इस संदर्भ में इटली एक उदार लोकतंत्र का एक दिलचस्प उदाहरण है, जिसमें दक्षिणपंथी लोकलुभावन दलों द्वारा सरकारी नीतियों को प्रभावित करने का एक लंबा इतिहास रहा है। इस लघु लेख में हम अपनी परियोजना का शोध–एजेंडा तथा हाल ही में *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, कल्चर, एंड सोसाइटी* में प्रकाशित एक केस स्टडी से प्राप्त अंतर्दृष्टियों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

> उदार लोकतंत्रों में वकालत की केंद्रीय भूमिका

उदार लोकतंत्रों में नागरिक समाज संगठनों का एक प्रमुख कार्य है – वकालत करना। कुछ संगठनों के लिए इसका अर्थ होता है अपने सदस्यों के अधिकारों या हितों की वकालत करना – जैसे कि महिलाओं, दिव्यांग व्यक्तियों, या अन्य अल्पसंख्यक समूहों के हित। अन्य संगठन सख्त प्रतिनिधि भूमिका के बिना अधिक सामान्य हितों का पीछा करते हैं, जैसे कि स्थिरता, शांति या मानव अधिकारों पर ध्यान केंद्रित करने वाले संगठन। यह वकालत की भूमिका उदार लोकतंत्र की विशिष्ट पहचान है और इसमें स्वतंत्र सार्वजनिक बहस और नीति–निर्माण प्रक्रियाओं तक पहुंच की पूर्वकल्पना की जाती है। इसलिए, नागरिक समाज संगठनों को राज्य तंत्र और नागरिकों के बीच मध्यस्थ के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार की वकालतकारी भूमिका संभावित रूप से उस सोच से टकरा सकती है – और कई बार सीधे संघर्ष में भी आ सकती है – जिसके अंतर्गत अनेक दक्षिणपंथी लोकलुभावन दल समाज और राजनीतिक व्यवस्था में अपनी भूमिका को परिभाषित करते हैं। ये दल प्रायः नेता और जनता के बीच सीधे संबंध पर बल देते हैं तथा नागरिक समाज संगठनों जैसे मध्यस्थों के विचार को खारिज करते हैं, जिन्हें वे अक्सर एक भ्रष्ट अभिजन वर्ग का हिस्सा मानते हैं। इसके अतिरिक्त, अनेक ऐसे नागरिक समाज संगठन, जो विगत दशकों में सार्वजनिक नीति निर्माण तक पहुँच की केन्द्रीय स्थिति में रहे हैं, उन सामाजिक आंदोलनों से उत्पन्न हुए हैं जो मानवतावाद, एकजुटता, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा, और भेदभाव के विरोध को बढ़ावा देते हैं। ये मूल्य, प्रायः दक्षिणपंथी लोकलुभावन दलों के राष्ट्रवादी, स्वदेशवादी तथा परंपरागत मूल्य–आधारित दृष्टिकोण के साथ टकराते हैं।

> वकालत और नागरिक समाज संगठनों की चार प्रकार की प्रतिक्रियाएँ

हमारे अध्ययन में यह विश्लेषण किया गया कि 2024 की बजट विधायी प्रक्रिया के संदर्भ में स्वीडन और इटली के प्रभावशाली नागरिक समाज संगठनों ने कैसे प्रतिक्रिया दी। बजट विधायन शासन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है – जिसमें विभिन्न नीतियों के लिए संसाधनों का आवंटन होता है, जिसमें नागरिक समाज संगठनों के लिए निधि भी सम्मिलित है। यह लोकलुभावन शासन के लिए एक आवश्यक साधन बन सकता है, जिसे लोकलुभावन दलों द्वारा सत्ता के प्रयोग के रूप में समझा जाता है। हमने प्रभावी नागरिक समाज संगठनों का अध्ययन इसलिए किया क्योंकि नीति–निर्माण में केंद्रीय स्थान होने तथा पर्याप्त संसाधनों से संपन्न होने के कारण, वे लोकलुभावन शासन उपायों द्वारा लाए गए परिवर्तनों से अत्यधिक प्रभावित हो सकते हैं, खासकर यदि उनके वित्त पोषण में कटौती कर दी जाए तो उनकी कार्य करने की क्षमता के संदर्भ में। साथ ही, यही संगठन, अपने प्रभावशाली स्थान के कारण, सरकार की आलोचना करने में भी सक्षम होते हैं – यद्यपि इसके बदले उन्हें अपनी विशेषाधिकार प्राप्त स्थिति खोने का जोखिम भी होता है।

इन प्रतिक्रियाओं की विविधता को समझने के लिए हमने नागरिक समाज संगठनों की प्रतिक्रिया रणनीतियों का एक ढाँचा विकसित किया, जो दो आयामों पर आधारित है: (1) आलोचना का स्तर – स्वीकार्यता से अस्वीकृति तक (2) आलोचना की प्रकृति – नीति–केंद्रित से व्यवस्था–केंद्रित तक। इन दो आयामों के मिलन से चार संभावित प्रतिक्रियाएँ बनती हैं:

यह मॉडल प्रतिक्रियाओं को इन आयामों के अनुसार परिभाषित करने की अनुमति देता है। नीति–उन्मुख स्वीकृति (नीचे बाएँ) उन नागरिक समाज संगठनों द्वारा अपनाई जाएगी जो मोटे तौर पर राजनीतिक यथास्थिति को स्वीकार करते हैं, लेकिन विशिष्ट नीतिगत विवरणों की आलोचना कर सकते हैं। इसके बजाय प्रणाली–उन्मुख स्वीकृति (नीचे दाएं) का उपयोग उन CSO द्वारा किया जाएगा जो व्यापक राजनीतिक ढांचे को स्वीकार करते हैं लेकिन महत्वपूर्ण प्रणालीगत सुधारों की वकालत करते हैं।

अधिक परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में, नीति–उन्मुख अस्वीकृति (ऊपर बाएँ) उन नागरिक समाज संगठनों द्वारा अपनाई जाएगी जो पूरी व्यवस्था को चुनौती दिए बिना लोकलुभावन सरकारों की विशिष्ट नीतियों या पहलों को अस्वीकार करते हैं। अंततः, व्यवस्था–उन्मुख अस्वीकृति (ऊपर दाएँ) उन नागरिक समाज संगठनों पर लागू होगी जो मूलतः लोकलुभावन शासन का विरोध करते हैं और परिवर्तनकारी बदलाव की वकालत करते हैं।

नीतिगत परिवर्तनों पर सीएसओ की प्रतिक्रियाएँ

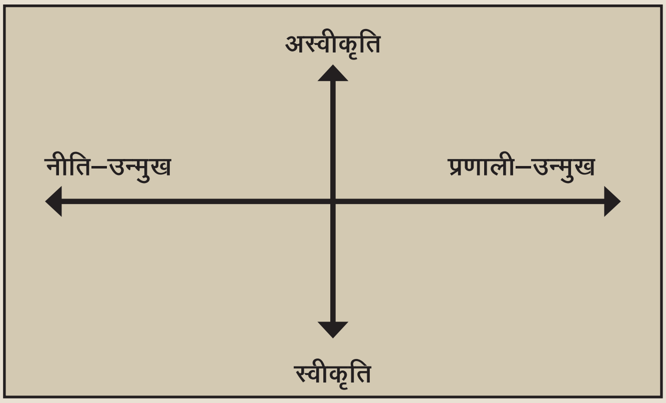

स्रोतः लेखक

> भिन्न नागरिक समाज संगठन, भिन्न प्रतिक्रियाएँ

हमारे अध्ययन में, हमें सभी चार प्रकार की प्रतिक्रियाओं के उदाहरण मिलते हैं, जो यह दर्शाते हैं कि लोकलुभावन शासन द्वारा लाए गए परिवर्तनों के प्रति नागरिक समाज संगठन, संगठनात्मक

>>

क्षेत्र में अपनी स्थिति के आधार पर, काफी अलग–अलग तरीके से प्रतिक्रिया दे सकते हैं। कुछ नीतिगत क्षेत्र ऐसे सुधारों के अधीन हो सकते हैं, जिन्हें नागरिक समाज संगठन प्रतिकूल मानते हैं, जिससे सदस्यों की नागरिक समाज संगठन या उनके द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने वाले हितों पर पड़ने वाले प्रभाव की धारणा प्रभावित होती है।विशिष्ट नीति क्षेत्रों में सक्रिय नागरिक समाज संगठनों की तुलना में, कुछ, जो सम्पूर्ण नागरिक समाज क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने का लक्ष्य रखते हैं, अधिक विरोधाभासी दृष्टिकोण या अधिक विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपना सकते हैं, जो संभवतः उनके सदस्यों के बीच आम सहमति के स्तर पर निर्भर करता है। अपनी विचारधारा और मिशन के आधार पर, कुछ संगठन राष्ट्रवादी–रूढ़िवादी एजेंडे से ज्यादा खतरा महसूस कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यह मजदूरों या प्रवासियों के आंदोलनों से जुड़े संगठनों पर लागू हो सकता है।

इन परिणामों से पता चलता है कि विभिन्न नागरिक समाज संगठन लोकलुभावन शासन के प्रति अलग–अलग प्रतिक्रिया देंगे, जो सुधारों के प्रभावों के बारे में उनकी धारणा, उनकी रुचि के नीतिगत क्षेत्र, उनकी विचारधारा और मूल्य आधार, तथा नागरिक समाज क्षेत्र पदानुक्रम में उनकी स्थिति पर आधारित होगा।

> नागरिक समाज की प्रतिक्रियाओं में संदर्भ मायने रखता है

तुलनात्मक अध्ययनों की केन्द्रीय मान्यता इस धारणा पर आधारित है कि जिन परिणामों में हमारी रुचि है, उनके लिए संदर्भ महत्वपूर्ण है। यूरोप में स्थिर उदार लोकतंत्रों के ढांचे के भीतर इटली और स्वीडन दो बहुत अलग संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। इतालवी नागरिक समाज पारंपरिक रूप से मुख्य रूप से सेवा प्रावधान की ओर उन्मुख है, जबकि स्वीडिश नागरिक समाज अभिव्यक्तिपूर्ण कार्यों और वकालत की ओर उन्मुख है। इटली में नागरिक समाज को दी जाने वाली राज्य वित्तीय सहायता अधिकतर अप्रत्यक्ष होती है, जो प्रादेशिक और स्थानीय प्रशासन के माध्यम से वितरित होती है; इसके विपरीत, स्वीडन में यह सहायता प्रत्यक्ष होती है और इसे राज्य की केंद्रीय एजेंसियाँ प्रशासित करती हैं। इसके अतिरिक्त, दोनों देशों में लोकलुभावन दलों के प्रकार, उनकी ऐतिहासिक विकास–यात्रा, और सत्ता तक उनकी पहुँच भी भिन्न है।

बजटीय कानून पर इतालवी और स्वीडिश नागरिक समाज संगठनों की प्रतिक्रियाओं में महत्वपूर्ण अंतर पाए जाने के बावजूद, हम अलग–अलग देशों के स्तर पर नागरिक समाज संगठनों की प्रतिक्रियाओं में भी पर्याप्त भिन्नता देखते हैं। दोनों देशों में, हम चार में से तीन प्रकार की प्रतिक्रियाओं से संबंधित प्रतिक्रियाओं के उदाहरण देखते हैं। हालांकि, संगठनों की प्रतिक्रियाओं की जांच करने और दोनों देशों की तुलना करने पर, हम पाते हैं कि स्वीडिश नागरिक समाज संगठन लोकलुभावन शासन को अस्वीकार करने और अधिक व्यवस्थित आलोचना की ओर अधिक उन्मुख हैं। इस बात पर आपत्ति के साथ कि हमारा केस अध्ययन सीमित संख्या (प्रत्येक देश के लिए 11) पर आधारित है, ये परिणाम बताते हैं कि लोकलुभावन शासन के प्रति नागरिक समाज संगठन किस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं, इस संबंध में राष्ट्रीय संदर्भ वास्तव में महत्वपूर्ण मायने रखता है।

इन अंतरों के लिए एक संभावित व्याख्या यह हो सकती है कि इटली में लोकलुभावन शासन का सामान्यीकरण हो रहा है, क्योंकि इटली एक ऐसा देश है जहां नागरिक समाज संगठन लंबे समय से इन नीतियों से निपट रहे हैं। सामान्यीकरण की ऐसी व्यवस्था का स्वीडन में नागरिक समाज संगठनों पर अभी तक कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। इटली में नागरिक समाज का सेवा–प्रदाय की ओर झुकाव होना भी एक कारण हो सकता है, जिससे वहाँ के संगठन सरकार की आलोचना करने से कम प्रवृत्त होते हैं, जबकि स्वीडन जैसे देशों में, जहाँ नागरिक समाज अधिक वकालत–केंद्रित है, आलोचनात्मक रुख अपेक्षाकृत अधिक देखा जाता है। यदि हम सार्वजनिक संस्थानों की प्रकृति का अवलोकन करें, तो यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्वीडन जैसे देशों में जहाँ नागरिक समाज को सीधे राज्य द्वारा वित्तपोषित किया जाता है, वहाँ लोकलुभावन शासन यदि विपक्षी संगठनों को बाधित करने का प्रयास करता है, तो उसका प्रभाव प्रत्यक्ष और तीव्र होता है – जिससे संगठनों की प्रतिक्रिया अपेक्षाकृत अधिक सशक्त हो सकती है।

> क्या नागरिक समाज संगठन लोकलुभावन शासन के प्रतिकार के रूप में कार्य कर सकते हैं?

इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। यह ध्यान देना आवश्यक है कि सुदृढ़ उदार लोकतंत्रों में भी, जहाँ प्रत्यक्ष रूप से कोई लोकलुभावन दल सत्तारूढ़ नहीं है, वहाँ उदारवादी सरकारों द्वारा भी नागरिक समाज संगठनों के विरुद्ध प्रतिबंधात्मक उपायों को लागू किया गया है। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि विभिन्न संदर्भों में अनेक संगठन, नागरिक क्षेत्र के संकुचन को अनुभव करते हैं। गतिशीलता के लिए उपलब्ध स्थान निरंतर सीमित होता जा रहा है, और इस प्रक्रिया के साथ–साथ ऐसे नीतिगत प्रतिबंध भी बढ़ रहे हैं, जो उन अनेक समूहों और मुद्दों को लक्षित करते हैं जिनके साथ प्रभावशाली नागरिक समाज संगठन कार्य करते हैं। नागरिक समाज संगठन किस हद तक अपनी स्थिति को प्रभावी बनाए रख सकते हैं, साथ ही सार्वजनिक नीति के प्रति आलोचनात्मक रुख अपना सकते हैं, यह नागरिक समाज अध्ययन में एक केंद्रीय विषय रहा है। यह मुद्दा लोकलुभावन शासन के समय में प्रासंगिक हो जाता है, जिससे लोकतांत्रिक पतन हो सकता है तथा अधिक निरंकुश शासन की ओर झुकाव हो सकता है। इसके अलावा, लोकलुभावन शासन और दक्षिणपंथी विमर्श के सामान्यीकरण के कारण नागरिक समाज संगठनों द्वारा महत्वपूर्ण वकालत कार्य करने की संभावना कम हो सकती है। लोकलुभावन शासन के समय में, साथ ही अन्य राष्ट्रीय संदर्भों में नागरिक समाज संगठनों की गतिविधियों के लिए संरचनात्मक और संगठनात्मक पूर्वापेक्षाओं का पता लगाने के लिए अधिक अध्ययन की आवश्यकता है।■

सभी पत्राचार रोबर्टो स्कारामुज्जिनो को <roberto.scaramuzzino@soch.lu.se> पर प्रेषित करें।

> इतिहास और सामाजिक सिद्धांत में उपनिवेशवाद विरोध

अनाहीद अल–हरदान, होवार्ड विश्वविद्यालय, यूएसए, और **जूलियन गो**, शिकागो विश्वविद्यालय, यूएसए द्वारा

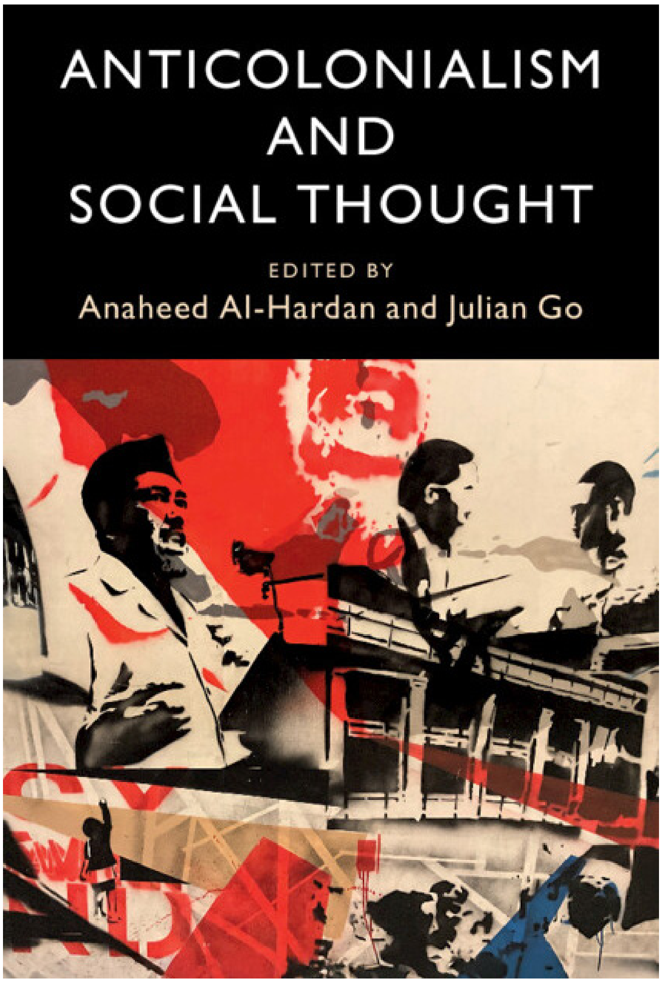

उपनिवेशवाद–विरोधी और सामाजिक विचार, अनाहीद अल–हरदान और जूलियन गो द्वारा संपादित, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। अपेक्षित ऑनलाइन प्रकाशन तिथिः अगस्त 2025।

सामाजिक सिद्धांत को "वैश्वीकृत" करने, प्रमुख समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों की सीमाओं को खत्म करने और सिद्धांत पर पुनर्विचार करने के प्रयास दशकों से चल रहे हैं। हमारा सुझाव है कि इस परियोजना के लिए मुख्य स्रोत के रूप में उपनिवेशवाद विरोधी विचार को सामने लाया जाना चाहिए। साम्राज्य और साम्राज्यवाद के खिलाफ एक रुख के रूप में उपनिवेशवाद विरोधी सोच ने नए, अभिनव और महत्वपूर्ण सामाजिक सोच का उत्पादन किया है और करना जारी रखा है। बीसवीं सदी में साम्राज्यवादी दुनिया को बदलने के अपने संघर्षों के बीच, उपनिवेशवाद विरोधी कर्त्ताओं ने इसके खिलाफ विनाशकारी आलोचनाएँ कीं। उन्होंने साम्राज्य के नस्लवाद, आर्थिक शोषण, राजनीतिक बहिष्कार और सामाजिक असमानताओं को चुनौती दी। नई अवधारणाएँ विकसित कर और दुनिया को नए तरीकों से सिद्धांतित कर उन्होंने उस दुनिया को बेहतर ढंग से समझने की भी कोशिश की जिसके खिलाफ वे संघर्ष कर रहे थे।

इस प्रकार उपनिवेशवाद–विरोध ने समाज को समझने के लिए प्रासंगिक नए सामाजिक विश्लेषण, अवधारणाएँ और सिद्धांत तैयार किए हैंः एक सच्ची आलोचनात्मक और असंतुष्ट समाजशास्त्रीय कल्पना। हमारा सुझाव है कि उपनिवेशवाद–विरोधी आंदोलनों और विचारकों से सीखना कई प्रमुख समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों की सीमाओं को पार करने की एक रणनीति है।

> उपनिवेशवाद विरोधी विचार को स्थापित करना

आधुनिक यूरोपीय और संयुक्त राज्य साम्राज्यवाद पंद्रहवीं शताब्दी में अमेरिका की विजय के माध्यम से शुरू हुआ। उपनिवेशवाद को राजनीतिक और आर्थिक वर्चस्व के अपने मुख्य साधनों में से एक मानते हुए, आधुनिक साम्राज्यवाद बीसवीं सदी में अपने चरम पर पहुंच गया, जब दुनिया के अधिकांश बसे हुए स्थान औपनिवेशिक साम्राज्यों और पूर्व उपनिवेश थे। साम्राज्यवाद आज भी विश्व को उपनिवेशवाद या नवउपनिवेशवाद के रूप में संरचित कर रहा है। फिर भी, इसे हमेशा प्रतिरोध का सामना करना पड़ा है, चाहे वह किसानों, बंधुआ मजदूरों और गुलामों से हो या फिर कार्यकर्ताओं, लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों से जो यूरोपीय और बाद में अमेरिकी वर्चस्व और इसकी असमानताओं का विरोध कर रहे हों। वर्तमान में, जबकि नवउपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद कायम है, स्टैंडिंग रॉक से गाजा तक उपनिवेशवाद विरोधी भावना साम्राज्यवादी शक्तियों को परेशान करना जारी हैं। अमेरिका में स्वदेशी प्रतिरोध से लेकर उपनिवेशवादी शासन तक, फ्रांस के खिलाफ हैती की क्रांति, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद लड़खड़ाते यूरोपीय साम्राज्यों के खिलाफ विउपनिवेशीकरण युग के असंख्य सशस्त्र संघर्ष, या हाल ही में ब्लैक लाइव्स मैटर आंदोलन और फिलिस्तीन में न्याय के लिए वैश्विक विश्वविद्यालयों पर कब्जे – जैसे विविध रूपों और जटिल वंश क्रमों में– उपनिवेशवाद विरोध की एक समृद्ध और बहुमुखी परंपरा है और यह निरंतर संघर्ष का गठन करती है जो दुनिया को प्रेरित और चुनौती देती है।

जबकि इतिहासकारों ने उनकी जटिलता, विरोधाभासों और संघर्षों को उजागर कर उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलनों के कुछ प्रमुख पहलुओं का खुलासा किया है, हमारा लक्ष्य उपनिवेशवाद विरोधी के सैद्धांतिक और ज्ञान संबंधी पहलुओं को पुनः प्राप्त करना है। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित एक आगामी पुस्तक,जिसे हमने सह–संपादित किया है और जिसका शीर्षक एंटीकोलोनिअलिस्म एंड सोशल थॉट है, में जैसा बताया गया है कि उपनिवेशवाद विरोधी ने साम्राज्यों और साम्राज्यवाद को चुनौती देने की प्रक्रिया के माध्यम से नवीन, अभिनव और महत्वपूर्ण सामाजिक सोच का उत्पादन किया है और करना जारी रखा है। उपनिवेशवाद–विरोधी विचारधारा लंबे समय से सामाजिक कल्पना के लिए एक सक्रिय क्षेत्र रही है, जो आज भी प्रासंगिक बनी हुई है और हमारे अनुसार यह सामाजिक विचार और सामाजिक सिद्धांत की एक विशिष्ट शैली प्रदान करती

>>

है। इसलिए हमारा सुझाव है कि इतिहास में उपनिवेशवाद–विरोध से उत्पन्न उपनिवेशवाद–विरोधी विचार को सामाजिक सिद्धांत के स्रोत के रूप में सामने लाया जाना चाहिए। हम उपनिवेशवाद–विरोध को एक राजनीतिक रुख के रूप में परिभाषित करते हैं, जो उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद द्वारा उत्पन्न असमानताओं को दूर करने के लिए कुछ सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रतिबद्धताएं रखता है, जो शुरू में साम्राज्यों द्वारा औपनिवेशिक अधीनता के अनुभवों से उभरी और उसी से प्रभावित थीं। ऐतिहासिक रूप से और आज भी, इस रुख में कई तरह के आलोचनात्मक विचार और परियोजनाएं शामिल हैं। हमारी परियोजना इस रुख के सामाजिक और समाजशास्त्रीय आयामों को पुनः प्राप्त करती है।

> साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को चुनौती देना

हमारे योगदान के पीछे दो प्रमुख आधार हैं। पहला यह है कि समाजशास्त्र विभागों और सामाजिक विज्ञानों में प्रसारित होने वाले अधिकांश सामाजिक सिद्धांत व्यापक रूप से एक लंबी साम्राज्यवादी परंपरा से उत्पन्न होते हैं और सूक्ष्म रूप से या स्पष्ट रूप से एक 'साम्राज्यवादी दृष्टिकोण' को समाहित करते हैं। 'सामाजिक सिद्धांत', जिसे आज समाजशास्त्र और उसके अमूर्त सिद्धांतों की अभिव्यक्ति कहा जाता है, यूरोपीय और अमेरिकी साम्राज्यवादी वैश्विक विस्तार के संदर्भ में निर्मित हुए थे, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है। इस प्रकार, साम्राज्य में, साम्राज्य के लिए जन्मे सामाजिक सिद्धांत ने विशेष प्रकार के प्रश्नों को संबोधित किया, विशिष्ट अवधारणाओं और सिद्धांतों को तैयार किया, और ऐसा अनुसंधान किया जो साम्राज्यवादी महानगरों में अभिजात वर्ग के हितों, चिंताओं और अनुभवों को प्रतिबिंबित करता था। जहाँ साम्राज्यवाद विरोधी आवाजें साम्राज्यों के दिलों में मौजूद थीं, जैसे कि वेब डु बोइस की, उन्हें दरकिनार कर दिया गया।

सामाजिक विज्ञान आज भी पहले के युगों की साम्राज्यवादी छाप को ढोते रहते हैं, जिसे उनकी विश्लेषणात्मक श्रेणियों, अंतर्निहित मान्यताओं और शोध प्रश्नों में पाया जा सकता है जो अभी भी साम्राज्यवादी महानगरों के हितों और चिंताओं को दर्शाते हैं। साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से निर्मित, सामाजिक सिद्धांत के पारंपरिक सूत्र अभी भी अपनी प्रांतीयता, विलोपन और अंध–बिंदुओं से बंधे हुए हैं।

जैसा कि कई आलोचकों ने हाल के वर्षों में तर्क दिया है, सामाजिक विज्ञान के अधिकांश विषय, सिद्धांत निर्माण से लेकर अनुसंधान विधियों तक, साम्राज्यवाद और नस्लवाद के साथ अपने संबंधों को गंभीरता से लेने में असमर्थता, यूरोकेन्द्रीयता और प्राच्यवाद के निरंतर प्रचलन, तथा दुनिया की बहुसंख्यक आबादी के अनुभवों, हितों और चिंताओं को नजरअंदाज करने से ग्रस्त हैं। साथ ही, सामाजिक सिद्धांत और समाजशास्त्र का विशाल हिस्सा, व्यापक रूप से साम्राज्यवादी दृष्टि के सीमित लेंसों को आंतरिक रूप से अपनाता रहता है, तथा अनिवार्यता, विश्लेषणात्मक द्विभाजन और महानगरीय मान्यताओं की समस्याओं में उलझा रहता है। इसमें फ्रैंकफर्ट स्कूल के विचारकों से लेकर मिशेल फूको तक, "आलोचनात्मक" माने जाने वाले प्रमुख सिद्धांतकारों के सिद्धांत शामिल हैं। तथाकथित 'उत्तर–औपनिवेशिक' दुनिया में भी, सामाजिक सिद्धांत और आधुनिक सामाजिक विज्ञान का अधिकांश हिस्सा यूरोपीय और अमेरिकी साम्राज्यवाद की विरासत को आगे बढ़ाता है – और ऐसा इसलिए भी क्योंकि दुनिया भर के कई देशों में, सामाजिक विज्ञान पहले यूरोपीय और बाद में अमेरिकी साम्राज्यों की संस्कृति के भीतर विकसित हुए थे।

दूसरा आधार यह है कि सामाजिक सिद्धांत के साम्राज्य और साम्राज्यवाद के साथ आधारभूत संबंध द्वारा छोड़ी गई घातक विरासतों पर काबू पाने के लिए हमें इस विषय में मौजूदा प्रयासों से आगे बढ़कर समाजशास्त्र और इसके सैद्धांतिक पक्ष को कम प्रांतीय, अधिक वैश्विक और दुनिया के अनुभवों की विविधता के प्रति अधिक खुला बनाने की आवश्यकता है। इनमें वे परियोजनाएँ शामिल हैं जो 'स्वदेशी समाजशास्त्र', 'दक्षिणी सिद्धांत' या 'दक्षिण ी ज्ञानमीमांसा' का दावा करती हैं। इसी तरह अन्य परियोजनाएँ सामाजिक विज्ञान की 'स्वायत्त परंपरा' की तलाश करती हैं या यूरोप के बाहर अलग–अलग क्षेत्रीय और राष्ट्रीय परंपराओं को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करती हैं। ये सभी ज्ञानमीमांसा परियोजनाएँ मूल्यवान हैं और इन्होंने महत्वपूर्ण तरीकों से बातचीत को आगे बढ़ाया है। लेकिन उनके कुछ विशेष केंद्र और सीमाएं हैं, जिनके बारे में हमारा मानना है कि उन्हें इतिहास में उपनिवेशवाद–विरोध को सामाजिक विचार के स्रोत के रूप में आज के लिए निरंतर प्रासंगिकता के साथ अपनाकर दूर किया जा सकता है।

> वैश्विक पूंजीवादी राजनीतिक भूगोल उपनिवेशवाद विरोधी सिद्धांत या राजनीतिक प्रतिबद्धताओं के लिए आवश्यक नहीं है

मौजूदा दृष्टिकोणों की मुख्य सीमा यह है कि वे एक संकीर्ण रूप से परिभाषित समस्या, यूरोसेंट्रिज्म पर लक्षित हैं, और इसलिए भौगोलिक रूप से आधारित उपायों की तलाश करते हैं। इन मौजूदा दृष्टिकोणों के अनुसार, प्रमुख सामाजिक सिद्धांत के साथ समस्या यह है कि वे यूरोप या 'पश्चिम' में उत्पन्न होते हैं। इसलिए, इसका उपाय विचारकों के "गैर–पश्चिमी" या "गैर–यूरोपीय" विचारों को खोजने में निहित है। इसका लक्ष्य 'गैर–पश्चिमी', 'स्वदेशी', 'एशियाई', 'अफ्रीकी' या 'दक्षिणी' विचारकों को खोजना और उनका उपयोग करना है, जो 'पश्चिम' और 'वैश्विक उत्तर' से 'बाहर' या 'बाहर' बौद्धिक स्थानों की तलाश कर रहे हैं। इस प्रकार ये दृष्टिकोण विचार की विषय–वस्तु के बजाय उसके भौगोलिक उद्गम को चुनौती देते हैं, जबकि यह मान लिया जाता है कि उत्तरार्द्ध का निर्धारण पूर्व द्वारा होता है। यदि कोई सामाजिक विचारक 'गैर–पश्चिमी' या 'गैर–यूरोपीय' स्थान पर रहता है या वहां से आया है, तो उसके विचारों को आवश्यक रूप से महत्व दिया जाना चाहिए (केवल उस भौगोलिक स्थान के कारण)।

भूगोल पर आधारित यूरोपीय सामाजिक विज्ञान की ये आलोचनाएँ निश्चित रूप से कुछ अर्थ रखती हैं। ऐतिहासिक रूप से, साम्राज्यवाद की राजनीतिक अर्थव्यवस्था मोटे तौर पर एक वैश्विक भूगोल में तब्दील हो गई है, जिसमें इसका पूंजीवादी केंद्र, यूरोप और बाद में अमेरिका, जिसे अक्सर 'पश्चिम' और हाल ही में 'वैश्विक उत्तर' के रूप में समझा जाता है, ने 'पूर्व' या हाल ही में 'वैश्विक दक्षिण' पर भौतिक और ज्ञान–मीमांसा दोनों रूप से प्रभुत्व जमाया है। हालाँकि, वैश्विक पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था का यह मोटा भूगोल साम्राज्यवादी केंद्रों के भीतर उपनिवेशित और नस्लवादी लोगों की वास्तविकता का पूरी तरह से हिसाब नहीं देता है। स्वदेशी समुदाय और उपनिवेशित और गुलाम लोगों के अन्य वंशज वैश्विक उत्तर के साथ–साथ वैश्विक दक्षिण में भी रहते हैं। इसके अलावा, यूरोपीय उपनिवेशवादी और उनके वंशज पूर्व या समकालीन उपनिवेशित स्थानों में भी रहते हैं।

संबंधित सीमा यह है कि भौगोलिक स्थान राजनीतिक प्रतिबद्धताओं या ज्ञान निर्माणों पर स्पष्ट रूप से मानचित्रित नहीं होते हैं। सभी सामाजिक विचारक और न ही पूर्व उपनिवेशित विश्व से निकले सभी सिद्धांत उपनिवेशवाद विरोधी हैं। पूर्व उपनिवेशित विश्व में सामाजिक विमर्श अभी भी साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को आत्मसात कर सकता है, कम से कम साम्राज्यवाद के इतिहास के कारण नहीं, जिसने साम्राज्यवादी धारणाओं को फैलाने और संस्थागत बनाने का काम किया है, और समकालीन ज्ञान उत्पादन की भू–राजनीतिक संरचना, जो समकालीन साम्राज्यवादी हितों की सेवा करती है और ज्ञान उत्पादन

>>

की एक नव–औपनिवेशिक वैश्विक संरचना का पुनरुत्पादन करती है। इसी प्रकार, 'यूरोप' या 'ग्लोबल नॉर्थ' के सभी सिद्धांतकार अनिवार्य रूप से और डिफॉल्ट रूप से प्रभुत्वशाली साम्राज्यवादी ज्ञान–मीमांसा का हिस्सा नहीं हैं। उन्होंने न तो साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का समर्थन किया है और न ही वे इसका समर्थन करना जारी रखते हैंय वे आवश्यक रूप से साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से काम नहीं करते हैं। साम्राज्यवाद–विरोधी आन्दोलन, विशेषकर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित आन्दोलन, उपनिवेशों में अपने साथियों के साथ संवाद करते हुए महानगरों में फैल गए हैं, और हमारी पुस्तक उपनिवेशवाद–विरोधी राजनीतिक विचारधारा के अनुरूप विभिन्न परम्पराओं की अवधारणाओं के फलदायी और उत्पादक प्रसार और पुनर्व्याख्यान को प्रदर्शित करती है।

इस प्रकार, ये भौगोलिक–आधारित दृष्टिकोण साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का विकल्प या आलोचना प्रस्तुत करने में विफल रहते हैंय और ऐसा करके, वे अनजाने में साम्राज्यवादी मान्यताओं को ही पुनरुत्पादित करते हैं। वे क्षेत्रों, संस्कृतियों, लोगों या समाजों को अलग–अलग भौगोलिक रूप से परिभाषित श्रेणियों में अनिवार्य बनाते हैं, जबकि उन विशिष्ट भौगोलिक स्थानों की कुछ ज्ञानात्मक विशेषताओं को मानते हैं। यह 'भू–ज्ञान–मीमांसा अनिवार्यता' केवल उस अनिवार्यता की अभिव्यक्ति है जो लंबे समय से साम्राज्यवादी ज्ञान–मीमांसा का हिस्सा रही है, और जिसके खिलाफ एडवर्ड सईद ने बहुत पहले चेतावनी दी थी, विशेष रूप से उनकी पुस्तक ओरिएंटलिज्म में।

> उपनिवेशवाद विरोधी दृष्टिकोण का वादा

हम किसी विशेष विचारक या सिद्धांत की विचार की वाद–विवादात्मक और भाषायी परम्पराओं को नकारते नहीं हैं, न ही हम यह दावा करते हैं कि विचारों के विकास और प्रसार का संस्थागत संदर्भ पूरी तरह अप्रासंगिक है। फिर भी, हमारा मानना है कि भूगोल और पहचान अकेले असंतुष्ट सामाजिक सिद्धांत और सामाजिक सिद्धांतकारों को परिभाषित करने और वर्गीकृत करने के लिए पर्याप्त श्रेणियां नहीं हैं। इसलिए, हमारी पुस्तक सामाजिक विचारकों और सिद्धांतकारों के बारे में हमारी समझ को भौगोलिक पहचान या स्थान के बजाय उपनिवेशवाद के विरोध के संदर्भ में प्रस्तुत करती है। साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के लिए एक सच्चा विकल्प प्रस्तुत करने के लिए, हम उपनिवेशवाद–विरोधी दृष्टिकोण (साम्राज्यवाद और उसके मुख्य प्रकार के उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद के विरुद्ध एक सामाजिक–राजनीतिक स्थिति के रूप में परिभाषित) में रुचि रखते हैं, जो सामाजिक विचार और सिद्धांत की एक विविध परंपरा उत्पन्न करता है जिसे सफलतापूर्वक 'उपनिवेशवाद–विरोधी' कहा जा सकता है।

'स्वदेशी', 'गैर–पश्चिमी' या अन्य प्रकार के विचारों के विपरीत, जिन्हें कुछ ज्ञानात्मक परियोजनाएं पुनः प्राप्त करना चाहती हैं, उपनिवेशवाद विरोधी दृष्टिकोण पर आधारित यह विचारधारा तथाकथित पश्चिमी विचारों से 'बाहर' या 'बाह्य' नहीं है और न ही हो सकती है। इसके विपरीत, उपनिवेशवाद विरोधी विचारकों ने यूरोपीय और बाद में अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करते हुए यूरोपीय विचार परंपराओं का आलोचनात्मक रूप से सामना किया। साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के विचारों और प्रवचनों के साथ एक आलोचनात्मक संबंध में उपनिवेशवाद विरोधी विचार और सिद्धांत गढ़े गए थे। मार्क्सवादी विचार, महानगरीय समाजशास्त्र या यूरोपीय दर्शन के पहलुओं को विस्तारित करने या सुधारने के उपनिवेशवाद विरोधी विचारकों के प्रयास ऐसे जुड़ाव के प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अलावा, उपनिवेशवाद विरोधी विचार भौगोलिक रूप से 'वैश्विक दक्षिण' में एकल स्थानों तक सीमित नहीं था और न ही है। उपनिवेशवाद विरोधी सामाजिक विचारक और उनके विचार महानगर और उपनिवेश और पूरे औपनिवेशिक दुनिया में व्यापक रूप से प्रसारित हुए। यहाँ एक उदाहरण माओवाद है, जिसके विचार चीनी उपनिवेशवाद विरोधी और उपनिवेशवाद–विरोधी विचार और सिद्धांत साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के विचारों और प्रवचनों के साथ आलोचनात्मक संबंध में गढ़े गए थे। यहां एक उदाहरण माओवाद का है, जिसके विचार चीनी उपनिवेशवाद विरोधी तथा क्रांतिकारी मुक्ति संग्राम से शुरू होकर अफ्रीका तथा एशिया के उपनिवेशवाद विरोधी विचारकों तथा कार्यकर्ताओं द्वारा अपनाए गए तथा उनकी व्याख्या की गई। इसका तात्पर्य केन्द्र के संरचनात्मक शक्ति सम्बन्ध को नकारना नहीं है; बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि उपनिवेशवाद–विरोधी सामाजिक सिद्धान्तकारों ने ऐसे सिद्धान्त और विचार–पद्धतियां तैयार कीं जो परिधियों के माध्यम से प्रसारित हुईं, तथा उन सम्बन्धों पर बल दिया जो शक्ति के वैश्विक विन्यास के केन्द्र के सम्बन्ध में हमेशा क्षैतिज नहीं थे, बल्कि ऊर्ध्वाधर भी थे।

> उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन की आवश्यकता आज भी उतनी ही जरूरी है जितनी पहले थी

हम उपनिवेशवाद विरोधी दृष्टिकोण को रूमानी या अनावश्यक रूप से महत्व नहीं देते हैं। औपनिवेशिक विश्व को पुनः व्यवस्थित करने का उपनिवेश–विरोधी कार्य कभी भी एक मौलिक या शुद्ध उपक्रम नहीं रहा है। यह भी सच है कि उपनिवेशवाद–विरोधी विचारों की कुछ धाराएं अनिवार्य पहचान के दावों, या पदानुक्रमिक और कट्टरपंथी प्रवृत्तियों से अछूती नहीं रही हैं। हम उपनिवेशवाद विरोधी विचार में इसलिए रुचि नहीं रखते क्योंकि हम मानते हैं कि यह वैचारिक या राजनीतिक रूप से बेदाग है, बल्कि इसलिए क्योंकि इसमें सैद्धांतिक और राजनीतिक क्षमता है। यह अंतर्दृष्टि, कल्पनाएँ, अवधारणाएँ और श्रेणियाँ प्रदान करता है; और महत्वपूर्ण प्रश्न और समस्याएँ उठाता है जिन्हें साम्राज्यवादी दृष्टिकोण और पारंपरिक सामाजिक विज्ञान में इसकी अभिव्यक्ति दबा देती है और अनदेखा कर देती है।

अंततः, हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि साम्राज्यवाद और इसके विपरीत, उपनिवेशवाद–विरोध समाप्त हो गया है। निरंतर उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद के रूप में साम्राज्यवाद आज भी कायम है। अभी भी ऐसे क्षेत्र हैं जो औपचारिक उपनिवेश के रूप में बने हुए हैं। प्यूर्टो रिको, मार्टीनिक और एंगुइला उनमें से कुछ हैं। वास्तव में, संयुक्त राष्ट्र सोलह क्षेत्रों को अभी भी औपनिवेशिक नियंत्रण में मानता है, जिनकी कुल आबादी लगभग दो मिलियन है। हठी और प्रत्यक्ष उपनिवेशवाद के अन्य उदाहरण जायोनी रहवासी उपनिवेशवाद से राष्ट्रीय मुक्ति के लिए चल रहे फिलिस्तीनी संघर्ष में भी पाए जा सकते हैं। वास्तव में, अतीत की तरह, अपने विभिन्न रूपों में स्थायी साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का आज महानगर के दिलों में और हमारे नव–औपनिवेशिक दुनिया में, उपनिवेशवाद विरोधी प्रतिरोध के नए रूपों से सामना हुआ है। वास्तव में, अतीत की तरह, अपने विभिन्न रूपों में स्थायी साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का आज भी महानगर के हृदय में और हमारी नव–उपनिवेशवादी दुनिया में, उपनिवेशवाद विरोधी प्रतिरोध के नए रूपों से सामना हो रहा है। इस स्थिति में शक्तिशाली सैद्धांतिक उपकरणों और आलोचनात्मक दृष्टिकोणों की आवश्यकता है, जिसके बारे में हमारा तर्क है कि इन्हें केवल उपनिवेशवाद–विरोधी सामाजिक विचार और सिद्धांत से ही प्राप्त किया जा सकता है, जो आज भी उतना ही जरूरी है। ■

सभी पत्राचार जूलियन गो को <jgo34@uchicago.edu> पर प्रेषित करें।

> डार्सी रिबेरो
और दक्षिण से एक वैश्विक सिद्धांत

अडेलिया मिग्लिएविच–रिबेरो, एस्पिरितो सैंटो फेडरल यूनिवर्सिटी, ब्राजील द्वारा

डार्सी रिबेरो और ऑस्कर नीमेयर 1985 में ब्रासीलिया विश्वविद्यालय (UnB) का दौरा करते हुए। फोटो : सेंट्रल आर्काइव/UnB।

ब्राजीली सामाजिक वैज्ञानिक और सार्वजनिक बुद्धिजीवी डार्सी रिबेरो (1922–1997) ने लगभग 1,000 पृष्ठों के लेखन की विरासत छोड़ी है। ब्राजील के अकादमिक जगत में भी, उनके कार्यों के बारे में अभी तक बहुत कम अध्ययन किया गया है, जबकि उनके कार्यों के 90 संस्करण दर्जनों भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं – जो लैटिन अमेरिकी लेखकों के बीच एक दुर्लभ उपलब्धि है। उनकी थीसिस के चारों ओर व्याप्त सन्नाटा शायद वैचारिक असहमति और उस समय के बौद्धिक परिदृश्य में "सक्रिय बुद्धिजीवी" की उनकी कट्टर पैरवी और सामान्य सिद्धांतों के प्रति उनकी स्थायी प्रतिबद्धता के कारण रहा, जिसे तब अप्रासंगिक माना जाता था।

1964 के सैन्य तख्तापलट के समय, जब ब्राजील के राष्ट्रपति जोआओ गुलार्ट को सत्ता से हटा दिया गया, रिबेरो उनके समर्थन में खड़े हुए। गुलार्ट की तरह, वे निर्वासन में चले गए, जहाँ उन्होंने

> >

स्वयं को "लैटिन अमेरिकी नागरिक" कहा। 1979 में माफी के तहत जब वे लौटे, तो उन्होंने डेमाक्रेटिक लेबर पार्टी (PDT) का हिस्सा बनकर लोकतंत्र के पुनर्निर्माण के कार्य में स्वयं को समर्पित कर दिया।

> दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्यः सभ्यतागत प्रक्रिया

रिबेरो लैटिन अमेरिका की सत्तावादी प्रवृत्तियों और उसके सतत विकासात्मक विलंब को समझने की आकांक्षा से प्रेरित थे, जिन्हें वे इस क्षेत्र की जनसंख्या को एक "बाहरी सर्वहारा" (external proletariat) के दर्जे तक सीमित करने वाला कारक मानते थे। फिर भी, इस ऐतिहासिक विलक्षणता को समझने के लिए, उन्होंने सबसे पहले लैटिन अमेरिका को एक वैश्विक सभ्यतागत प्रक्रिया के अंतर्गत रखने का प्रयास किया, और लगभग 14,000 वर्षों के विकास का विश्लेषण किया।

हम स्वदेशी लोगों को एक–दूसरे के सापेक्ष कैसे वर्गीकृत करें – जो उन्नत सभ्यताओं से लेकर कृषि–पूर्व समुदायों तक फैले हुए थे, और जिन्होंने विकास के अपने स्तर के अनुसार विजय के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की? हम स्वदेशी लोगों, यूरोपीयों, और अफ्रीकियों को – जिन्हें विकास के विभिन्न चरणों में स्थित समूहों से उखाड़कर अमेरिका में दास श्रमिक के रूप में लाया गया – कैसे स्थान दें? हम उन यूरोपीयों को कैसे वर्गीकृत करें जिन्होंने इस उपनिवेशीकरण को संचालित किया? क्या सबसे पहले आने वाले इबेरियाई और उनके बाद विशाल क्षेत्रों पर प्रभुत्व स्थापित करने वाले नॉर्डिक लोग एक ही प्रकार की सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना का प्रतिनिधित्व करते थे? अंततः, हम अमेरिकी राष्ट्रीय समाजों को कैसे वर्गीकृत और संबद्ध करें – विशेष रूप से उनके उस स्तर के आधार पर जिस तक वे कृषिक–व्यापारिक सभ्यता और अब औद्योगिक सभ्यता की जीवन–शैली में समाहित हो चुके हैं?

अपनी युवावस्था में, रिबेरो मार्क्स के ग्रुंड्रिस से बहुत प्रभावित थे, विशेष रूप से निकट पूर्व की प्राचीन जलीय सभ्यताओं के उनके विश्लेषण से, जो उत्पादन का एक ऐसा तरीका था जिसमें भूमि का स्वामित्व फैरो के पास होता था और उसका प्रशासन नौकरशाहों के पास होता था जो कृषि नियोजन और श्रम वितरण का प्रबंधन करते थे।

रिबेरो ने उत्तेजक तरीके से इबेरिया और अमेरिका को इस वैश्विक सभ्यतागत ढांचे में शामिल किया, और आलोचकों को उत्तर दियाः *'फिर भी, मैं यह मानने का अधिकार सुरक्षित रखता हूं कि, सब कुछ के बावजूद, मैं मार्क्स का उत्तराधिकारी हूं।'*

उन्होंने वैज्ञानिक विमर्श को सामाजिक संदर्भों और अवलोकनकर्ता की स्थिति को गंभीरता से लेकर पुनः परिभाषित करने की वकालत की। मार्क्स की तरह, रिबेरो ने भी पर्यवेक्षण, तुलना और व्याख्या के जरिए रूपांतरण की संभावनाओं को देखने की आवश्यकता पर बल दिया। 'इसी दृष्टिकोण से हमने *द सिविलाइजेशनल प्रोसेस* लिखी है...'

अपने प्रारंभिक कार्यों में रिबेरो ने प्रौद्योगिकी का एक आलोचनात्मक इतिहास प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने चौदह सहस्राब्दियों (14,000 वर्षों) की अवधि में बारह सभ्यतागत प्रक्रियाओं और अठारह सामाजिक–सांस्कृतिक विन्यासों की पहचान की। अतिसामान्यीकरण के खतरों से अवगत होने के बावजूद, उन्होंने समग्रताओं को सिद्धांतबद्ध करने पर बल दिया – जहाँ समकालिक और कालक्रमिक विश्लेषणों का संश्लेषण होता है। उनका उद्देश्य एक ऐसा मजबूत तुलनात्मक ढाँचा बनाना था, जो पदानुक्रमात्मक श्रेणीकरण से परे जाकर संबंधपरक व्याख्या को प्राथमिकता देता हो।

> तकनीकी नवाचार और एकल सभ्यता प्रक्रिया

रिबेरो ने बहुरेखीय नव–विकासवाद (शास्त्रीय विकासवाद से एक असहमति) को अपनाया, और स्वयं को एककारणीय और उद्देश्यवादी मॉडलों से दूर कर लिया। उन्होंने इतिहास की उद्विकासवादी अवधारणा का समर्थन किया – 'जो आवश्यक रूप से उद्विकासवादी नहीं थी' – जिसे वे औद्योगिक और समाजवादी क्रांतियों सहित सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए आवश्यक मानते थे।उनके अनुसार, 'उद्विकास ' का तात्पर्य यह था कि मानव समूह अपनी भौगोलिक और ऐतिहासिक घटनाओं द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर रचनात्मक रूप से अपने अस्तित्व का निर्माण करते हैं, जिन्हें अपेक्षाकृत एकसमान संरचनाओं के रूप में क्रिस्टलीकृत किया जा सकता है, लेकिन वे अस्थायी होती हैं।

रिबेरो ने अमूर्तता के अनेक स्तरों पर काम किया। उन्होंने सभ्यतागत प्रक्रिया (अल्फ्रेड वेबर के समान) की अवधारणा का इस्तेमाल किया, एकल सभ्यतागत प्रक्रियाओं (सोरोकिन की सांस्कृतिक महा–प्रणालियों के समान) पर ध्यान केंद्रित किया, और तकनीकी क्रांतियों को गॉर्डन चाइल्ड और लेस्ली व्हाइट द्वारा चर्चित व्यापक सांस्कृतिक क्रांतियों की तुलना में अधिक सीमित दायरे वाला बताया। उन्होंने 'सांस्कृतिक–ऐतिहासिक विन्यास' की संज्ञा दी, जिसे जूलियन स्टीवर्ड ने सांस्कृतिक पारिस्थितिकी पर अपने अध्ययन में सांस्कृतिक प्रकार कहा था।

रिबेरो के लिए तकनीकी क्रांतियाँ मानव द्वारा प्रकृति के साथ परस्पर क्रिया के स्वरूप में गुणात्मक परिवर्तन को सूचित करती हैं, और इस प्रकार सामाजिक ढाँचों में भी गुणात्मक बदलाव लाती हैं। इन क्रांतियों ने ऊर्जा उपयोग में परिवर्तन के माध्यम से सभ्यता के पथ को आकार दिया, जो न केवल मानवों को प्रभावित करती हैं, बल्कि स्वयं भी मानव गतिविधियों द्वारा आकार ग्रहण करती हैं।

उद्विकास के चरण रैखिक रूप से नहीं घटित हुए, बल्कि पर्यावरणीय जटिलताओं के साथ सफल अनुकूलन के माध्यम से उभरे। तकनीकी नवाचार कभी भी पृथक घटनाएँ नहीं थीं, बल्कि एक त्रिआयामी प्रणाली का हिस्सा थीं, जिनमें से प्रत्येक की एक आंतरिक संरचना थीः क) अनुकूलन प्रणालीः जीवन की भौतिक स्थितियों का उत्पादन और पुनरुत्पादनय ख) साहचर्य प्रणालीः उत्पादन संबंधों का नियमनय ग) वैचारिक प्रणालीः प्रतीकात्मक संचारध्भाषा, ज्ञान, विश्वास, मूल्य, सामाजिक मानदंड, जीवन शैली और व्यवहार के सभी रूप।

> परावर्तित आधुनिकीकरण और उद्विकासत्मक तीव्रता

रिबेरो ने इस बात पर जोर दिया कि तकनीकी आविष्कार आंतरिक रूप से उभर सकते हैं या प्रसार के माध्यम से अपनाए जा सकते हैं। प्रत्येक सभ्यता की ग्रहणशीलता का अपना अनूठा तरीका होता है। उन्होंने इससे दो प्रमुख अवधारणाएँ विकसित कीं: प्रतिवर्ती आधुनिकीकरण/ऐतिहासिक समावेशन, और विकासवादी त्वरण।

पहली संकल्पना का तात्पर्य है "लोगों का तकनीकी रूप से अधिक विकसित सामाजिक–सांस्कृतिक प्रणालियों के प्रति बाध्यकारी जुड़ाव, जिसके परिणामस्वरूप स्वायत्तता की हानि या यहां तक कि एक जातीय इकाई के रूप में विनाश होता है।" समावेशन या प्रतिवर्तीता की अवधारणा उन प्रतिगामी आंदोलनों का वर्णन करती है जिन्हें प्रगति के रूप में छिपाया जाता है, जबकि वे

>>

वास्तव में प्रगति नहीं हैं। विकासात्मक त्वरण की अवधारणा प्रतिवर्ती आधुनिकीकरण/ऐतिहासिक समावेशन का विकल्प है।

प्रतिवर्ती आधुनिकीकरण/ऐतिहासिक समावेशन विकास नहीं, बल्कि ठहराव है। रिबेरो के अनुसार, उचित विकास के लिए लोगों में अपने लक्ष्य स्वयं निर्धारित करने की क्षमता होना आवश्यक है।

आलोचनात्मक बुद्धिजीवियों की नजर में गरीबी, भुखमरी, नरसंहार और प्रजातियों का विलुप्त होना कभी भी प्रगति का प्रतीक नहीं रहे हैं। हमेशा 'जो बाद में आता है' वह अधिक समृद्धि का संकेत नहीं देता, जैसा कि 'कुशल तकनीक के अति–उपयोग' से उत्पन्न विनाश से स्पष्ट होता है। जो प्रणालियाँ ध्वस्त हुईं, उन्होंने मौसम की परिस्थितियों के अनुकूल ढलने में कोई सार्थक प्रगति नहीं की। इसके बजाय, वे उनसे अभिभूत हो गईं – स्थिर हो गईं, पीछे हट गईं और अंततः लुप्त हो गईं।

ये अंतर्दृष्टियाँ आज विकास–विरोधी आह्वानों के बीच विशेष रूप से प्रासंगिक हैं। तकनीकी विकास असमानता को गहरा कर सकता है और कमजोर समाजों को बाहरी नुकसान पहुँचा सकता है।

उदाहरण के लिए, यूरोप की समृद्धि उपनिवेशवादी हिंसा के माध्यम से सुनिश्चित की गई, जबकि वैश्विक दक्षिण के अधिकांश हिस्सों ने गहरी होती गरीबी, युद्ध, आपदाओं और निरंतर संघर्षों का सामना किया।

> डार्सी रिबेरो और समकालीन वैश्विक समाजशास्त्र

रिबेरो के कार्यों पर आज पुनर्विचार करने से केंद्र और परिधि पर वैश्विक समाजशास्त्रीय बहस समृद्ध होती है। रिबेरो ने इन्हें स्थिर अवस्थाओं के रूप में नहीं, बल्कि गतिशील प्रक्रियाओं के रूप में परिभाषित किया: केंद्र को विकासवादी त्वरण की गति के रूप में, और परिधि को आत्म–प्रतिबिंबित आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के रूप में।

यह सोच हमें समकालीन चिंतकों के साथ जुड़ने के लिए आमंत्रित करती है। उदाहरण के लिए, मटुराना और वरेला का अनुसरण करते हुए निकलास लुहमान अपने पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया करती विकासशील प्रणालियों की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं – जो रिबेरो के सभ्यतागत ढाँचों के साथ समानताएँ रखता है। यह प्रश्न उठाया जा सकता है: क्या सभ्यताएं अंततः समाजों, व्यक्तियों और पर्यावरण के बीच संचार के सफल माध्यम हैं?

रिबेरो के विचार लैटिन अमेरिका के मार्क्सवादी निर्भरता सिद्धांतकारों – रुई मौरो मारिनी, वानिया बाम्बिरा, थियोटोनियो डॉस सैंटोस – और इमैनुएल वालरस्टीन के विश्व–व्यवस्था विश्लेषण से भी मेल खाते हैं। ये सभी वैश्विक पूंजीवाद, केंद्र–परिधि गतिशीलता और व्यवस्था–विरोधी आंदोलनों के संकट से जूझ रहे थे।

वैश्विक समाजशास्त्र में, सममित संवाद की आवश्यकता अत्यंत आवश्यक है। जैसा कि एस.एफ. अलाटस तर्क देते हैं, दक्षिणी सिद्धांतों को 'भोले स्थानीयपन' से बचना चाहिए और इसके बजाय विद्रोही, विश्वव्यापी समाजशास्त्रों को बढ़ावा देना चाहिए। सुजाता पटेल की *आईएसए हैंडबुक ऑफ डाइवर्स सोशियोलॉजिकल ट्रेडिशंस* इस बहुलवाद का उदाहरण प्रस्तुत करती है, जो राष्ट्रीय और क्षेत्रीय परंपराओं के बीच संवाद को बढ़ावा देती है।

आगे बढ़ते हुए, एंग्लोफोन उत्तर–औपनिवेशिक अध्ययनों को लैटिन अमेरिकी गैर–औपनिवेशिक चिंतन, अश्वेत अध्ययन, अधीनस्थ नारीवाद और अमेरिकी ज्ञानमीमांसा से जोड़ना आवश्यक है। ये 'नए ज्ञानमीमांसीय विषय' – जो भू–राजनीतिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टि से हाशिए पर हैं – राज्य, राष्ट्र, पूंजीवाद, विकास और लोकतंत्र जैसी मूलभूत अवधारणाओं पर महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

इस बहुलतावादी संसार में, डार्सी रिबेरो का कार्य उत्तर और दक्षिण, तथा सिद्धांत और व्यवहार के बीच एक सेतु के रूप में खड़ा होता है।वे एक सीमाओं को पार करने वाले बौद्धिक थे – जो एक साथः सामाजिक वैज्ञानिक, स्वदेशी मानवविज्ञानी, सार्वजनिक हस्ती और अप्रत्याशित रूप से एक साहित्यकार भी थे। ■

सभी पत्राचार अडेलिया मिग्लिएविच–रिबेरो को <miglievich@gmail.com> पर प्रेषित करें।

* यह लेख लेखिका की निम्न पुस्तक पर आधारित है – *डार्सी रिबेरो, सिविलाइजेशन एंड नेशन' सोशल थ्योरी फ्रॉम लैटिन अमेरिका*, रूटलेज, 2024

> जर्मनी में यहूदी–विरोधी भावना

का औजारीकरण और फिलिस्तीनी एकजुटता का बहुआयामी दमन

* लेखक अपने कार्यस्थलों, जर्मन मीडिया, राजनेताओं और सामान्य रूप से जर्मन राज्य तंत्र से होने वाले दुष्प्रभावों के डर से अपना नाम गुप्त रखना चाहते हैं।

श्रेय : फ्रीपिक

कब्जे वाले फिलिस्तीनी अधिकारियों पर संयुक्त राष्ट्र के विशेष दूत, फ्रांसेस्का पी. अल्बानीज को बर्लिन के फ्री यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों और छात्रों द्वारा 19 फरवरी, 2025 को 'कंडीशंस ऑफ लाइफ कॅल्क्युलेटेड टू डिस्ट्रॉयः लीगल एंड फॉरेंसिक पर्सपेक्टिव्स ऑन द ऑनगोइंग गाजा जेनोसाइड' पर बोलने के लिए आमंत्रित किया गया था। सुरक्षा संबंधी चिंताओं का हवाला देते हुए, विश्वविद्यालय के रेक्टर ने अल्प सूचना पर ही प्रत्यक्ष रूप से आयोजित इस वार्ता को रद्द कर दिया। इन परिस्थितियों को देखते हुए, वार्ता को एक अलग स्थान पर आयोजित किया गया और विश्वविद्यालय में इसका सीधा प्रसारण किया गया। जर्मनी के राजनीतिक कर्ताओं ने गाजा में इजराइल द्वारा किए जा रहे नरसंहार पर अल्बानीज के बयान के लिए उन्हें यहूदी–विरोधी करार दिया था। इस कार्यक्रम को रद्द करने का दबाव बर्लिन के महापौर, बर्लिन के विज्ञान मामलों के सीनेटर और इजराइली राजदूत की ओर से आया, जिन्होंने संभावित कार्यक्रम को 'हमास समर्थकों का प्रशिक्षण शिविर' बताया था। जर्मन मीडिया में भी इस कार्यक्रम की रिपोर्टिंग में अल्बानीज को 'एक कट्टर इजराइल–विरोधी व्यक्ति, जिसकी दुनिया भर में आलोचना होती है' कहा गया था। इससे एक सप्ताह पहले म्यूनिख की लुडविग मैक्सिमिलियन विश्वविद्यालय ने भी उन्हीं कारणों से उनका व्याख्यान रद्द कर दिया था। इसके बाद अल्बानीज ने कहाः "मैंने कभी नहीं देखा कि विश्वविद्यालय इतने व्यापक रूप से दबाव में झुक जाएं, लेकिन मैंने कभी इतना दबाव भी नहीं देखा।" अल्बानीज के व्याख्यान को रद्द किया जाना जर्मनी में असहमति को दबाने के कई उदाहरणों में से एक है।

> असहमति को चुप कराना

7 अक्टूबर 2023 के बाद से गाजा में चल रहे नरसंहार के विरोध में और फिलिस्तीन के साथ एकजुटता में वैश्विक सामाजिक आंदोलन के हिस्से के रूप में, जर्मनी में विरोध प्रदर्शनों और संबंधित गतिविधियों की तीव्रता देखी गई है। हालांकि, यह आंदोलन जर्मन प्रशासन द्वारा असहमति को दबाने के अभूतपूर्व स्तर का सामना कर रहा है। राजनीतिक समाजशास्त्र और सामाजिक आंदोलन अध्ययनों के अनुसार, "चुप कराने" का आशय उन आवाजों, दृष्टिकोणों या अभिव्यक्तियों को संस्थागत, राजनीतिक या वैचारिक माध्यमों से व्यवस्थित रूप से दबाना, हाशिए पर ले जाना या अवैध ठहराना है, जो प्रभुत्वशाली आख्यानों या सत्ता संरचनाओं को चुनौती देती हैं। अब तक 200 से अधिक (सार्वजनिक रूप से दर्ज) कार्यक्रम रद्द

>>

किए जा चुके हैं, जिनमें वार्ताएं, अकादमिक नियुक्तियां, पुरस्कार, सांस्कृतिक कार्यक्रम, फिल्म प्रदर्शनियां और कला प्रस्तुतियां शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, सड़कों पर विरोध प्रदर्शनों पर हिंसक दमन, और बर्लिन में प्रदर्शनों के दौरान अरबी भाषा के उपयोग तक पर पाबंदी शामिल है।

इस लेख में हम गाजा में नरसंहार की आलोचना और जर्मन शिक्षा जगत तथा उसके बाहर फिलिस्तीन के प्रति एकजुटता की अभिव्यक्ति को दबाने के लिए यहूदी–विरोध के इस्तेमाल पर चर्चा करते हैं। हम एक विशिष्ट तंत्र पर ध्यान केंद्रित करते हैं: जर्मनी में यहूदी–विरोध के एक विशिष्ट और रणनीतिक रूप से गढ़े गए विचार को, लोगों को चुप कराने को वैध बनाने के एक अस्पष्ट और लचीले साधन के रूप में इस्तेमाल करना। डोनाटेला डेला पोर्ता ने जर्मनी में एंटीसेमिटिज्म की राजनीति को नैतिक घबराहट कहा है, और पीटर उलरिच इसे सत्तावादी एंटीसेमिटिज्म कहते हैं। ये अवधारणाएं दर्शाती हैं कि कार्यों और वक्तव्यों को यहूदी–विरोधी घोषित करने की आरोपण सीमाएं कितनी धुंधली हैं, और इसे असहमति को चुप कराने के वैचारिक, राजनीतिक और रणनीतिक उपकरण के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। हम यह नहीं कहते कि जर्मनी में यहूदी–विरोध नहीं है; यह निश्चित रूप से मौजूद है और देश में लंबे समय से चल रहे फासीवाद–विरोधी और नस्लवाद–विरोधी संघर्षों में परिलक्षित होता है। हमारा तर्क यह है कि जब इस यहूदी–विरोध के लेबल का उपयोग इजराइली सरकार की आलोचना या फिलिस्तीन के प्रति समर्थन को अवैध ठहराने के लिए किया जाता है, तो आलोचनात्मक विमर्श को दबा दिया जाता है। यहूदी–विरोधी भावना के अविवेकपूर्ण आरोप युद्ध अपराधों, नरसंहार, मानवाधिकार उल्लंघनों तथा फिलिस्तीन और फिलिस्तीनियों के विरुद्ध लागू की गई हानिकारक इजरायली नीतियों और राजनीति पर चर्चा को रोकते हैं, जिससे जर्मनी में एक ईमानदार और खुली बहस को रोका जा सकता है, जिसकी अत्यंत आवश्यकता है।

> यह चुप्पी क्यों?

जर्मनी के बाहर कई पर्यवेक्षक देश में यहूदी–विरोधी भावना को चुप कराने के एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किए जाने के प्रति प्रतिरोध और जागरूकता की कमी से हैरान हैं। वास्तव में, यहूदी–विरोधी भावना के आरोपों का इस्तेमाल अन्य देशों में भी दमन के एक हथियार के रूप में किया जाता है, खासकर अमेरिका में, हालाँकि, जर्मन संदर्भ के कुछ अलग पहलू भी हैं।

सबसे पहले, जर्मनी की इस विशिष्ट सामाजिक–राजनीतिक स्थिति के स्पष्टीकरण का एक हिस्सा होलोकॉस्ट का जर्मन पहचान और संस्थाओं से संबंध है, जिसे इजरायल सरकार के प्रति महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को दर्शाने और इजरायल राज्य की सुरक्षा को जर्मनी के स्टाट्सरासन से जोड़ने के लिए निर्मित किया गया है। होलोकॉस्ट के प्रति अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी के हिस्से के रूप में, यहूदी–विरोध का मुकाबला करना और उसकी रोकथाम करना जर्मन सरकार की प्राथमिकता घोषित किया गया है। यह प्रतिबद्धता जर्मनी की कानूनी संरचनाओं, राजनीतिक विमर्श, और शिक्षा प्रणाली में गहराई से समाहित है।

द्वितीय, यही संस्थाएँ समाज में सामाजिक नियमों, मूल्यों और मानदंडों को गढ़ती हैं, जिससे एक विशिष्ट प्रकार की आत्म–पहचान का निर्माण होता है। जर्मन वामपंथ के कुछ हिस्सों ने एक तथाकथित "एंटी–जर्मन" चेतना को भी अपनाया है, जो यह मानती है कि जर्मनी की राष्ट्रीय पहचान अनिवार्य रूप से उसके फासीवादी और यहूदी–विरोधी अतीत से जुड़ी हुई है, और इसलिए वे स्वयं को इजराइल समर्थक के रूप में प्रस्तुत करते हैं –इस सोच के साथ कि इजराइली नीतियों की आलोचना करना स्वाभाविक रूप से यहूदी–विरोधी है। ऐसी सामूहिक स्मृति–संस्कृति, जो होलोकॉस्ट के प्रति ऐतिहासिक अपराधबोध पर आधारित है, जर्मन संस्थानों, सार्वजनिक मीडिया और समाज के बड़े हिस्से में, इजराइली सरकार के प्रति बिना प्रश्न किए समर्थन के रूप में व्यक्त होती है–यह प्रवृत्ति राजनीतिक मतभेदों के परे दिखाई देती है। इसका परिणाम यह होता है कि लोग इजराइल पर आधारित सूक्ष्म, संतुलित और आलोचनात्मक दृष्टिकोणों में भाग लेने से हिचकिचाते हैं।

तीसरा, जर्मनी में यहूदी–विरोधी भावना के प्रमुख धुर–दक्षिणपंथी प्रवर्तक भी फिलिस्तीन के साथ एकजुटता की कार्रवाइयों को दबाने का पुरजोर समर्थन करते हैं: ऐसा करने से उनके नस्लवादी प्रवासी–विरोधी, अरब–विरोधी और इस्लाम–विरोधी विचारों और राजनीति को रणनीतिक आड़ मिलती है। इससे उन्हें मुसलमानों और आम तौर पर अल्पसंख्यकों के खिलाफ नस्लवाद को और भी ज्यादा वैध बनाने में मदद मिलती है।

अंततः, मुख्यधारा के कई अन्य लोग, जो इन राजनीतिक पहचानों या समूहों के प्रति दृढ़ता से झुकाव नहीं रखते, "गलत बात कहने" के डर से चुप रहते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि राजनीतिक–अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से जर्मन राज्य और इजराइली राज्य के बीच घनिष्ठ और अडिग संबंध, वृहद और लाभकारी व्यापारिक निवेशों तथा सौदों से भी संचालित होते हैं। जर्मनी यूरोप में इजराइल का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है। साथ ही, जर्मनी इजराइल का दशकों से दूसरा सबसे बड़ा हथियार आपूर्तिकर्ता रहा है, जिसमें 2022 से 2023 के बीच भारी वृद्धि दर्ज की गई – जिससे जर्मन उद्योगों को बहुत लाभ हुआ। इन दोनों देशों के बीच सैन्य सहयोग का एक लंबा इतिहास भी है।

मीडिया का एक बड़ा हिस्सा खुली बहस और आलोचनात्मक जाँच–पड़ताल में शामिल नहीं हुआ है। इजराइल के दृष्टिकोण को असंतुलित और पक्षपातपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जबकि फिलिस्तीनियों की रिपोर्टों, उनके दुखदृकष्ट और मृत्यु की घटनाओं को या तो कमतर किया गया है या पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया है। फिलिस्तीन और फिलिस्तीनी जनता के समर्थन में व्यक्त विचारों को यहूदी–विरोधी, या फिर "हमास समर्थक" या "इजराइल–विरोधी" की संज्ञा देकर खारिज किया जा रहा है।

> जर्मनी में यहूदियों के प्रति घृणा का लचीला और अस्पष्ट दमनकारी औजार के रूप में निर्माण

यहूदी–विरोध के साधनीकरण की परिभाशात्मक जड़ों को अंतर्राष्ट्रीय होलोकॉस्ट स्मरण गठबंधन (IHRA) द्वारा यहूदी–विरोध की कार्यकारी परिभाषा द्वारा वैध ठहराया गया है, जिसे जर्मनी में संस्थानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाया गया है। वास्तव में, IHRA की परिभाषा की आलोचना यहूदी–विरोध की अपनी समझ में अत्यधिक अस्पष्ट होने के कारण की जाती है, जिससे इजराइल की किसी भी आलोचना को संभावित रूप से यहूदी–विरोधी माना जाता है। यहूदी–विरोध पर जेरूसलम घोषणापत्र के लेखकों के अनुसार, इस परिभाषा में 'यहूदी–विरोधी भाषण और इज़राइल व ज़ायोनिज़्म की वैध आलोचना के बीच अंतर' पर स्पष्टता का अभाव है। वास्तव में यहूदी विरोधी क्या है, इस बारे में IHRA का यह अस्पष्ट और धुँधला चित्रण जर्मनी में इसके व्यापक और (राजनीतिक और वैचारिक रूप से) रणनीतिक दुरुपयोग की अनुमति देता है।

जर्मन संसद में हाल ही में पारित दो सरकारी प्रस्ताव (7 नवंबर, 2024 को सभी प्रमुख राजनीतिक दलों द्वारा सर्वसम्मति से: *'फिर कभी नहीं अब है – जर्मनी में यहूदी जीवन की रक्षा, संरक्षण और*

>>

सुदृढ़ीकरण' और 30 जनवरी, 2025 को *'स्कूलों और विश्वविद्यालयों में इजरायल (इजराइलफिंडलिचकेइट) के प्रति यहूदी–विरोधी और शत्रुता का मुकाबला करना और चर्चा के लिए मुक्त स्थान सुरक्षित करना')* शैक्षणिक और सांस्कृतिक संगठनों सहित सार्वजनिक संस्थानों पर निर्देशित हैं, ताकि आईएचआरए परिभाषा के आधार पर यहूदी विरोधी भाषण और कृत्यों की पहचान की जा सके और दंडात्मक कार्रवाई की अनुमति मिल सके।

दूसरा प्रस्ताव विशेष रूप से प्रतिबंधों के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है, जैसे बहिष्कार का आह्वान करने वाले व्यक्तियों और गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाना, जिसमें 'बहिष्कार, विनिवेश और प्रतिबंधश (बीडीएस) आंदोलन और इसी तरह के अन्य आंदोलनों की गतिविधियाँ' शामिल हैं। आईएचआरए की परिभाषा का इस्तेमाल असहमति को दबाने के एक साधन के रूप में किया जा रहा है। इसका अधिकांश लक्ष्य विश्वविद्यालय हैं।

एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसे अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों, शिक्षाविदों, वकीलों और यहूदी–विरोधी विद्वानों ने शैक्षणिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों के लिए दोनों प्रस्तावों की कड़ी आलोचना की है। प्रस्तावों का दावा है कि इनका उद्देश्य "यहूदी जीवन की रक्षा" करना है, लेकिन व्यवहार में वे विचारों के आदान–प्रदान और ज्ञान निर्माण को रोकने वाले सत्तावादी औजार बन गए हैं। गंभीर रूप से, ये शिक्षा क्षेत्र में भविष्य के राजनीतिक हस्तक्षेपों का द्वार खोलते हैं, जैसे कि यहूदी–विरोधी आरोपों के लिए जर्मनी के भीतर और बाहर, शिक्षाविदों की प्रोफाइलिंग को सामान्य बनाना। इससे जर्मनी के विश्वविद्यालयों में आत्म–मौन और अंतर्राष्ट्रीय आदान–प्रदान को सीमित करने का नकारात्मक प्रभाव और बढ़ सकता है। हाल ही में, IHRA के लेखकों में से एक, केन स्टर्न ने कहा कि 'इसे कॉलेज परिसर में भाषण को लक्षित करने या उसे चुप करने के साधन के रूप में तैयार नहीं किया गया था, और न ही इसका उद्देश्य कभी था।'

> अकादमिक जगत में चुप्पी

फिलिस्तीन के समर्थन से जुड़े वक्ताओं, सम्मेलनों और कार्यशालाओं, शैक्षणिक नियुक्तियों और पदों, और अनुसंधान अनुदानों के रद्द होने की जानकारी की एक लंबी सूची सार्वजनिक रूप से उपलब्ध है, जिसका अभिलेखीय संग्रह 'आर्काइव ऑफ साइलेंस' में दर्ज है। उदाहरण के लिए, कोलोन विश्वविद्यालय ने प्रोफेसर नैन्सी फ्रेजर का विजिटिंग प्रोफेसर पद रद्द कर दिया था। ब्रिटिश–फिलिस्तीनी सर्जन और ग्लासगो विश्वविद्यालय के रेक्टर डॉ. गस्सान अबू सित्ताह को जर्मनी में प्रवेश करने से रोक दिया गया था। हालाँकि, हम पर्दे के पीछे और अनौपचारिक रूप से होने वाली चुप्पी के बारे में कम जानते हैं, जिसका प्रचार नहीं किया जाताः जिन गतिविधियों को चुप रखा जाता है, उनके बारे में व्यवस्थित आँकड़े जुटाना मुश्किल है। हमारा मानना है कि पूरे जर्मनी में विश्वविद्यालयों में चुप्पी की घटनाएँ होती हैं। शिक्षाविद नियमित रूप से विभिन्न जर्मन विश्वविद्यालयों में होने वाली घटनाओं के अनुभवों और सूचनाओं पर एक–दूसरे के साथ चर्चा करते हैं। हम उन लोगों के कुछ उदाहरण साझा करना चाहेंगे जो गुमनाम रहना चाहते हैंरू

- एक शोधकर्ता, जिन्होंने गाजा में मानवीय सहायता की अपील करने वाले एक सार्वजनिक पत्र पर हस्ताक्षर किए थे, को डीन द्वारा बताया गया कि एक अज्ञात अभिभावक (एक यहूदी छात्र के माता–पिता) ने उन्हें "यहूदी–विरोधी" और यहूदी छात्रों की सुरक्षा के लिए खतरा बताया है। अपने अनुबंध को संकट में डालने से बचने के लिए उस शोधकर्ता ने हस्ताक्षर वापस ले लिए।
- विश्वविद्यालय नेतृत्व द्वारा दमन और मीडिया की तीखी प्रतिक्रिया के डर से एक अतिथि प्रोफेसर को फिलिस्तीन समर्थक वक्ताओं को आमंत्रित करने से रोक दिया गया।
- एक फिलिस्तीनी डॉक्यूमेंट्री की स्क्रीनिंग को सुरक्षा कारणों से रद्द कर दिया गया।
- घृणास्पद भाषण के डर से (वि) उपनिवेशवाद और फिलिस्तीन पर एक व्याख्यान श्रृंखला को मंजूरी नहीं दी गई।
- विश्वविद्यालय नेतृत्व ने बीडीएस आंदोलन पर चर्चा करने वाले एक कार्यक्रम के आयोजन में हस्तक्षेप किया।
- एक नरसंहार अध्ययनकर्ता को "सेटलर कोलोनियलिज्म" (बसावट–आधारित उपनिवेशवाद) शब्द को अपने पाठ्यक्रम में उपयोग करने से प्रतिबंधित कर दिया गया, यह कहकर कि इससे छात्रों को मानसिक कष्ट हो सकता है।

ये सभी घटनाएं ऐसे लोगों के साथ हुईं, जो शैक्षणिक क्षेत्र में अस्थायी या संवेदनशील पदों पर कार्यरत थेकृजैसे पीएचडी छात्र, पोस्टडॉक्टोरल शोधकर्ता और गैर–स्थायी प्रोफेसर। इनमें से अधिकांश व्यक्ति गैर–जर्मन थे। सामान्यतः, इन चुप्पियों का कारण मीडिया में बदनामी का भय या छात्रों को भावनात्मक क्षति पहुंचाने की आशंका रही।

कुछ विश्वविद्यालय छात्र विरोध प्रदर्शनों का केंद्र बन गए हैं। विश्वविद्यालय नेतृत्व ने पुलिस से छात्र प्रदर्शनकारियों को हिंसक तरीके से हटाने का आह्वान किया है, और कई विश्वविद्यालयों ने कानूनी चुनौतियाँ दायर की हैं, जिसके परिणामस्वरूप छात्रों पर अदालती मामले और जुर्माना लगाया गया है। हैम्बर्ग विश्वविद्यालय और बर्लिन मुक्त विश्वविद्यालय जैसे कुछ विश्वविद्यालयों ने छात्र विरोध प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगा दिया है। जर्मन प्रेस, विशेषतः टैब्लॉइड अखबार ठप्स्व, ने उन प्रोफेसरों को हटाने की मांग की है जिन्होंने छात्रों के प्रदर्शन के अधिकार का समर्थन करने वाले पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। इन हस्ताक्षरों को "एंटीसेमिटिक हेट स्पीच" कहा गया। एक असाधारण घटना में, बर्लिन के एलिस सालोमन कॉलेज की अध्यक्ष, जिन्होंने पुलिस को छात्र प्रदर्शनकारियों को हटाने के लिए नहीं बुलाया, पर मीडिया द्वारा विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और छात्रों की देखभाल करने के कर्तव्य का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गयाय रूढ़िवादी राजनेताओं ने उनके इस्तीफे की मांग की। हाल ही, अप्रैल 2025 में, बर्लिन के आव्रजन अधिकारियों ने कॉलेज परिसरों में विरोध प्रदर्शन गतिविधियों के कारण चार गैर–जर्मन छात्रों के खिलाफ निर्वासन की कार्यवाही शुरू की।

> सड़क पर विरोध प्रदर्शनों में खामोशी

7 अक्टूबर, 2023 से, गाजा में नरसंहार के खिलाफ विरोध प्रदर्शन जर्मनी सहित दुनिया भर में फैल गए हैं। इन विरोध प्रदर्शनों में विभिन्न कार्यकर्ता समूह, गैर सरकारी संगठन और जमीनी स्तर के संगठन, शांति आंदोलन, अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार और एकजुटता आंदोलन (यहूदी संगठनों सहित), और जर्मनी में नस्लवाद–विरोधी और लोकतंत्र समर्थक समूह शामिल हैं। इन सड़क विरोध प्रदर्शनों को यहूदी–विरोधी करार देकर, पुलिस द्वारा भारी शारीरिक दमन और स्थानीय सरकारों द्वारा कानूनी प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है, जिन्हें अक्सर टैब्लॉइड और कुछ मुख्यधारा के मीडिया का भी प्रबल समर्थन प्राप्त होता है।

यूरोप में सबसे बड़ी फिलिस्तीनी प्रवासी आबादी वाले शहर बर्लिन में, अक्टूबर 2023 और अक्टूबर 2024 के बीच 100 से ज्यादा विरोध

>>

प्रदर्शन हुए। उन्हें भारी दंगा पुलिसिंग, शारीरिक हिंसा, गिरफ्तारियों और प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा है। पुलिस ने अक्सर उग्रवादी रणनीति अपनाई है, जिसके कारण सैकड़ों लोगों (जिनमें बच्चे भी शामिल हैं) को विभिन्न आरोपों के तहत गिरफ्तार किया गया है, जिनमें उकसावे, आतंकवाद के संकेत और हमास का समर्थन करने के आरोप शामिल हैं। कुछ मामलों में, आरोपों के कारण गैर–नागरिकों के खलिाफ निर्वासन की कार्यवाही भी हुई।

विरोध प्रदर्शनों को दबाने के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपनाए गए हैं। फरवरी 2025 में, बर्लिन के स्थानीय अधिकारियों ने नारों (मुखर और संकेतों पर) में अरबी भाषा के इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगा दिया। ढोल बजाने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया ताकि पुलिस अरबी में लिखे किसी भी नारे को सुन सके। कुछ प्रेस, जैसे कि टैब्लॉइड BILD और BZ, ने न केवल भाषा प्रतिबंध का समर्थन किया, बल्कि इससे अधिक कठोर कार्रवाई की मांग की। अरबी भाषा को अपराधी घोषित किया जाता है और इसे 'प्रचार अपराधों' की भाषा के रूप में चित्रित किया जाता है, जिससे मुस्लिम–विरोधी और अरब–विरोधी भावनाएँ और भी बढ़ जाती हैं।

इस भारी दमन का औचित्य अक्सर प्रदर्शनों में लगाए गए नारों, चिह्नों और प्रतीकों के आधार पर यहूदी–विरोधी आरोपों के माध्यम से सिद्ध किया गया। प्रदर्शनकारियों के खिलाफ हिंसा और दमन को वैध ठहराने के लिए यहूदी–विरोधी होने के सामान्यीकृत आरोपों का इस्तेमाल करना स्थानीय संदर्भों को भी प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, बर्लिन में, न्यूकोलन और क्रुजबर्ग जिलों, जिनमें बड़ी अरब और प्रवासी आबादी है और जो लंबे समय से सक्रियता और राजनीतिक लामबंदी के केंद्र रहे हैं, में कई विरोध प्रदर्शन होते हैं। इन क्षेत्रों को उनकी उच्च आप्रवासी आबादी के कारण 'समस्याग्रस्त जिले' करार दिया गया है, और पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच झड़पें ऐतिहासिक रूप से आम रही हैं। इन क्षेत्रों में विरोध प्रदर्शनों के दमन को अतीत में नस्लीय पुलिसिंग से जोड़ा गया है। दमन का यह पैटर्न न केवल सभा करने की स्वतंत्रता को कम करता है, बल्कि नस्लीय पुलिसिंग और असहमति के स्वरों पर व्यापक राज्य नियंत्रण को भी मजबूत करता है।

> यहूदियों से घृणा का औजारिक उपयोग

परिस्थितियाँ अत्यंत गंभीर हैं। इजरायल की नीतियों, सैन्य कार्रवाइयों और नरसंहार की वैध आलोचना को दबाने के लिए यहूदी–विरोध का इस्तेमाल जर्मनी में तेजी से बढ़ते अधिनायकवादी सामाजिक और राजनीतिक माहौल को बढ़ावा देता है। इसके परिणाम विविध और व्यापक हैं। यह प्रवासी समुदायों – खासकर अरबी भाषी समुदायों – को अपराधी ठहराकर दक्षिणपंथियों के एकत्र होने और विरोध प्रदर्शन करने के प्रति दोहरे मानदंड को लागू करने में मदद करता है, जिससे जर्मन समाज में मुस्लिम–विरोधी और अरब–विरोधी नस्लवाद और भी बढ़ जाता है। यह अति–दक्षिणपंथ के सामान्यीकरण में योगदान देता है, जो इस गतिशीलता का फायदा उठाकर अपने अति–दक्षिणपंथी यहूदी–विरोध से ध्यान हटाता है। इस तरह, यहूदी–विरोध का राजनीतिकरण, लोगों को चुप कराने के एक हथियार के रूप में, जर्मनी में वास्तविक यहूदी–विरोध से लड़ने से भी रोक सकता है।

जर्मनी में नस्लवाद, विदेशी–द्वेष और यहूदी–विरोध पर ठोस चर्चाओं के लिए विमर्श की गुंजाइश आज काफी सीमित हो गई है, जिससे नागरिक समाज पर और अधिक प्रतिबंधों की एक मिसाल कायम हो रही है। जर्मनी में चुप कराने के एक राजनीतिक और वैचारिक हथियार के रूप में यहूदी–विरोध का बहुआयामी और रणनीतिक इस्तेमाल उसे एक खतरनाक राह पर ले जा रहा है जिससे देश के अंतरराष्ट्रीय अलगाव को और मजबूत करने का खतरा है, जो जर्मन सोंडरवेग (जर्मन अपवादवाद) की याद दिलाता है। इस वैश्विक संदर्भ में, जर्मनी में हो रहे घटनाक्रम एक चेतावनी और कार्रवाई का आह्वान दोनों हैं, जो अभिव्यक्ति, विरोध और पूछताछ की स्वतंत्रता की रक्षा करने की आवश्यकता पर जोर देते हैं, जिससे हर जगह युद्ध और नरसंहार के विरुद्ध विश्वव्यापी न्याय के सिद्धांतों का संरक्षण होता है। ■

> खंडित शहर : ईरान में स्त्री–विरोधी नगरीकरण की एक समालोचना

अरमिता खालतबरी लिमाकी, स्वतंत्र शोधकर्ता, वास्तुकार एवं डिजाइनर, ईरान द्वारा

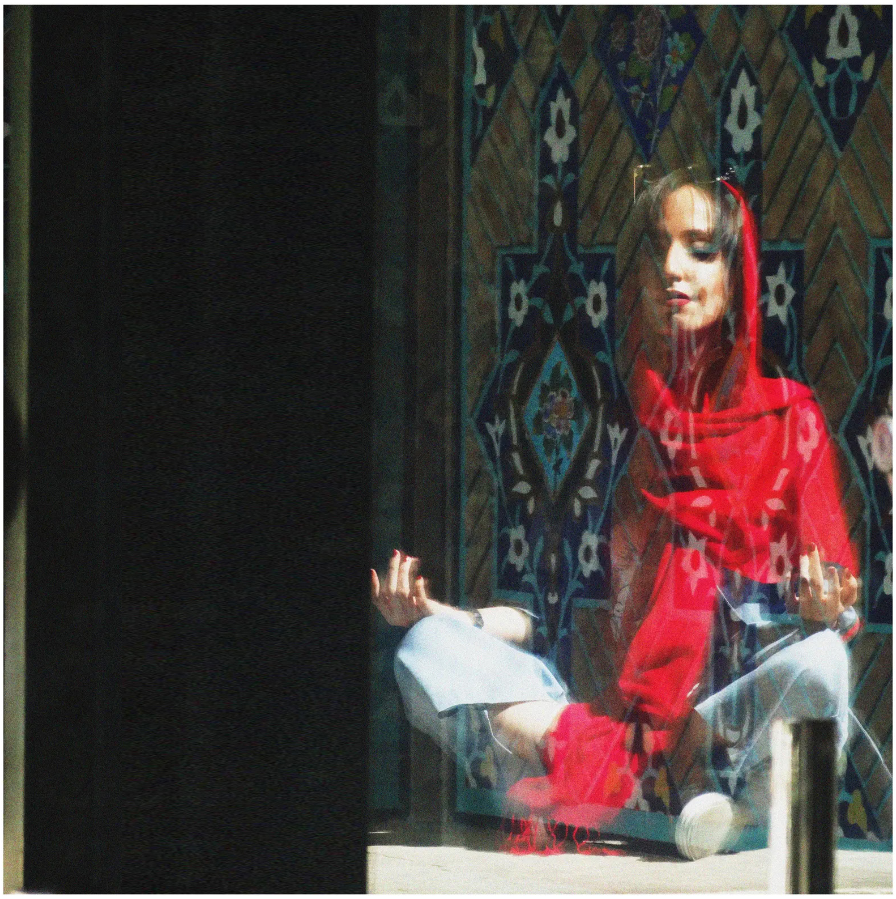

लाल स्कार्फ, तेहरान – नियावरन कॉम्प्लेक्स, 2014. क्रेडिट : अर्मिता खलतबारी लिमाकी

शहरी विकास में महिलाओं की भूमिका और प्रमुख शहरी निर्णयों की प्रक्रिया में उनकी अदृश्यता से निपटने के लिए एक व्यापक बहस की आवश्यकता है, खासकर जब हम धार्मिक कानूनों वाले देश का सामना कर रहे हों। यह लघु निबंध इस संदर्भ में महिलाओं के साथ हुई कुछ अन्यायपूर्ण घटनाओं का उदाहरण प्रस्तुत करेगा और लोगों की जीवनशैली और कानूनों व कागजों में लिखी बातों के बीच के गहरे अंतर को गहराई से समझेगा। मेरी कार्यप्रणाली सैद्धांतिक प्रकृति की है, और एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए, मेरा उद्देश्य एक विशिष्ट सांस्कृतिक ढाँचे के भीतर महिलाओं, शहरी क्षेत्रों और सामाजिक न्याय के बीच जटिल अंतर्संबंधों पर चर्चा करना है।

> कोई संकेत स्त्रैण वातावरण को प्रकट नहीं कर सकता

लगभग 20 वर्ष पूर्व, ईरान में "लेडीज पार्क" नामक एक नगरीय योजना प्रस्तावित की गई थी, जिसका उद्देश्य था सार्वजनिक स्थलों में महिलाओं की स्वतंत्रता और सामाजिक जीवंतता को सशक्त करना। इस योजना का मकसद महिलाओं को सुरक्षा और सुविधा की अनुभूति कराना था, जिसके लिए उन्हें शहरी सार्वजनिक स्थलों के कुछ विशेष हिस्से आवंटित किए गए। हरे–भरे वृक्षों, फव्वारों और रंग–बिरंगे फूलों से युक्त पार्कों की डिजाइन तैयार की गई, किंतु लागू कानूनों ने इससे बिल्कुल विपरीत धारणाएँ व्यक्त कीं – जो मनोरंजन स्थलों के मूल उद्देश्यों से पूरी तरह असंगत थीं। परिणामस्वरूप, कुछ गिने–चुने लोग ही इन पार्कों में उपस्थिति के इच्छुक थे, जबकि अधिकांश महिलाओं ने इन स्थलों में प्रदत्त सुरक्षा और शांति को कृत्रिम और अवास्तविक अनुभव किया – एक ऐसी प्रणाली द्वारा थोपी गई रचना, जो उनके लिए दमनकारी और अन्यायपूर्ण थी।

योजना की विफलता और इसकी लोकप्रियता में कमी का कारण इस त्रुटिपूर्ण धारणा में निहित है कि कुछ चीजें जो मूल रूप से अविभाज्य हैं, उन्हें वास्तव में अलग किया जा सकता है। कुछ गुण ऐसे होते हैं जिन्हें किसी सीमित स्थान में सीमित नहीं किया जा सकताय कुछ विशेषताएँ ऐसी होती हैं जो एक शहर के मूल डीएनए में प्रवाहित होनी चाहिए। हालाँकि, ऐसे गतिशील गुणों को एक विशिष्ट स्थान प्रदान करने और निरंतर गतिशील चीजों को कैद

>>

करने की कल्पना करने का प्रयास, केवल अलगाव की भावना को ही जन्म देता है, और इसलिए विफल रहा। जिस प्रकार शहर में पुरुषत्व का भाव जगाने के लिए किसी चिन्ह या लेबल की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार किसी पार्क के प्रवेश द्वार पर केवल एक चिन्ह की उपस्थिति ही स्त्रीत्व का वातावरण बनाने के लिए पर्याप्त नहीं थी।

> सीमाओं के भीतर सीमित अमूर्त और परिवर्तनशील गुण खंडित भावनाओं को जन्म देते हैं

जब शहर के विशिष्ट क्षेत्रों में जीवंतता और उत्साह की भावना पैदा करने के लिए सार्वजनिक स्थानों के आवंटन पर विचार किया जाता है, तो ऐसी ही समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। मैं यह नहीं कह रही हूँ कि विभिन्न उपयोगों के लिए भूमि के क्षेत्रीकरण में कोई बुनियादी त्रुटि है। यहाँ मैं एक और बुनियादी अंतर की ओर इशारा कर रही हूँ, अर्थात् 'भावनात्मक क्षेत्रीकरण', जो आवश्यक और सर्वव्यापी है, और मूल रूप से असहनीय है। संतुष्टि, आनंद, पारदर्शिता और पर्यावरण से परिचय जैसे गुणों का अस्तित्व, जिन्हें एक स्वस्थ शहर के आवश्यक घटक माना जाता है, किसी भी कानून या विनियमन के अधीन नहीं है।

जब स्थानिक व्यवस्था को इन अमूर्त और परिवर्तनशील गुणों के लिए विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों को आवंटित करके विभाजित किया जाता है, तो हम उन्हें शहर के परिदृश्य के अभिन्न अंग के रूप में आनंद लेने के बजाय, उन्हें केवल सीमित सीमाओं के भीतर ही प्रकट होने देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक अप्रभावी और अपूर्ण उत्पाद प्राप्त होता है। इसका अर्थ है मौन स्वीकृति कि शहर को खंडों में विभाजित किया जाना चाहिए, और – एक ऐसी व्यवस्था जो यह अपेक्षा करती है कि शहर के हर खंड से केवल एक निश्चित व्यवहार ही प्राप्त हो, और उससे आगे कुछ नहीं।

परिणामस्वरूप, भले ही सार्वजनिक पार्कों और मनोरंजन केंद्रों के विस्तार के साथ 'सुखद जीवन के अनुभवों' की कुल मात्रा बढ़ती है, फिर भी इन परिस्थितियों में पूरे शहर में एक सुसंगत भावनात्मक परिदृश्य विकसित नहीं हो सकता। इसके बजाय, पूरे शहर में बिखरी हुई भावनाएँ बिखरी रहेंगी, जिनके बीच कोई अंतर्निहित सूत्र नहीं होगा, और नागरिकों के पास उन भावनाओं की सराहना करने के लिए विशिष्ट स्थानों में उन्हें खोजने और आत्मसात करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचेगा। अंततः, ऐसे वातावरण से संयमित व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती, और ऐसी परिस्थितियों में सामूहिक संतुष्टि और संतोष प्राप्त करना लगभग असंभव है।

> एक शहर हमेशा अपने निवासियों को प्रतिबिंबित करेगा, जिन्हें पदानुक्रमिक नियोजन द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता

यहाँ मेरी आलोचना का विषय यह है कि वास्तविकता में इस अराजकता को कम करने के उद्देश्य से लिए गए ऐसे निर्णय मौजूदा असंतोष को और बढ़ाते ही हैं। जीवन की आंतरिक व्यवस्था पर दृश्य व्यवस्था को प्राथमिकता देकर, वे अपनी अंतर्निहित अनुशासनात्मक प्रकृति के बावजूद, कानून और पारंपरिक अनुबंधों जैसे परिचित और वैध उद्देश्यों के साथ मिलकर तनाव का एक नया रूप पैदा करते हैं। वास्तव में, यही कारण है कि कठोर और स्थिर क्षेत्रीकरण योजनाएँ, जो मानव व्यवहार की गतिशील प्रकृति की उपेक्षा करती हैं, असफल होने के लिए अभिशप्त हैं: वे या तो किसी ऐसे गुण के प्रदर्शन और आवर्धन के अनुष्ठान हैं जो दुर्लभ है, या जिम्मेदारी से बचने के तरीके हैं।

ऐसी पदानुक्रमित व्यवस्था, जो सामाजिक असमानता के सामने मौन रहती है और सभी व्यक्तियों को एक ही निश्चित मानक पर मापने का प्रयास करती प्रतीत होती है, अंततः एक खंडित समाज को जन्म देती है, जो अलग–अलग वर्गों में बँटा होता है, जहाँ कुछ लोग अपने ऊपर थोपी गई व्यवस्था से संतुष्ट रहते हैं, जबकि अन्य इससे वंचित रह जाते हैं। इस परिदृश्य में, गरीबी एक विकट समस्या के रूप में उभरती है, व्यवहारिक हिंसा के साथ–साथ अपराध और अपराधी प्रवृत्तियाँ आम हो जाती हैं, और व्यापक संतुष्टि एक दुर्लभ और अनमोल रत्न में बदल जाती है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी व्यक्ति की भौतिक स्थिति द्वारा निर्धारित पदानुक्रमिक संरचना, सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, व्यक्ति की मानसिक स्थिति में क्रमिक परिवर्तनों की ओर ले जाती है। वास्तव में, इन शहरी नियमों को पहले शहर के मौजूदा सांस्कृतिक मानदंडों, मूल्यों और सामाजिक आचार–संहिताओं के साथ संरेखित किया जाना चाहिए, बजाय इसके कि शहर से उनके अपरिचित निर्देशों का पालन करने की अपेक्षा की जाए। परिणामस्वरूप, शहरी विकास को नियंत्रित करने के लिए कानूनों और नियमों की आवश्यकता के बावजूद, अस्तित्वगत अर्थ और मेजबान समुदाय की विशिष्ट विशेषताओं के प्रति प्रतिबद्धता का अभाव उन्हें अमान्य और मूल्यहीन बना देगा, जिससे सांस्कृतिक परिवर्तन एक अवास्तविक अपेक्षा बन जाएगा। ■

सभी पत्राचार अरमिता खालतबरी लिमाकी को <armita.khalatbari@yahoo.com> पर प्रेषित करें।

ISA PUBLICATIONS

GLOBAL DIALOGUE

International Sociological Association

https://globaldialogue.isa-sociology.org/

www.isa-sociology.org